ऐतिहासिक निर्णय 2023

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
1	गैर-मुद्रांकित मध्यस्थता समझौतों की प्रवर्तनीयता।	**मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 और भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 के तहत मध्यस्थता समझौतों के बीच परस्पर क्रिया के संबंध में बनाम** **2023 INSC 1066** **(13 दिसंबर 2023)** क्यूरेटिव पीईटी(सी) संख्या 44/2023 आरपी(सी) संख्या 704/2021 सीए संख्या 1599/2020 में **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, न्यायमूर्ति सूर्यकांत, न्यायमूर्ति जमशेद बी. पारदीवाला, न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा **प्रश्न:** क्या बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प वाले अनुबंध में मध्यस्थता खंड प्रवर्तनीय है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 2011 में, एसएमएस टी एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी (पी) लिमिटेड [2011 आईएनएससी 508] (" **एसएमएस टी एस्टेट्स** ") में सुप्रीम कोर्ट की एक डिवीजन बेंच (दो जज) ने माना कि बिना मुहर लगे अनुबंध में मध्यस्थता समझौता अमान्य है। फरवरी 2020 में, धर्मरत्नाकर राय बहादुर अर्कोट नारायणस्वामी मुदलियार छत्रम बनाम भास्कर राजू एंड ब्रदर्स [2020 आईएनएससी 194] ("**भास्कर राजू**") में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने एसएमएस टी एस्टेट्स में इस फैसले को मंजूरी दी। • 2021 में, एनएन ग्लोबल मर्केंटाइल (पी) लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड [2021 आईएनएससी 12] ("**एनएन ग्लोबल 1") में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने** एसएमएस टी एस्टेट्स के विपरीत दृष्टिकोण अपनाया और माना कि अनुबंध पर मुहर न लगाने से उसमें निहित मध्यस्थता समझौता अमान्य नहीं होगा और मध्यस्थता समझौते पर कार्रवाई की जा सकती है। न्यायालय के इन परस्पर विरोधी निर्णयों को देखते हुए, इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए एक संविधान पीठ (पांच न्यायाधीश) का गठन किया गया। • दिसंबर 2022 में भास्कर राजू फैसले पर पुनर्विचार के लिए सुप्रीम कोर्ट में एक क्यूरेटिव पिटीशन (सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर पुनर्विचार करने का अंतिम उपाय) दायर की गई थी । क्यूरेटिव पिटीशन पर अंतिम रूप से फैसला होने से पहले, अप्रैल 2023 में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने एनएन ग्लोबल मर्केंटाइल (पी) लिमिटेड बनाम इंडो यूनिक फ्लेम लिमिटेड [2023 आईएनएससी 423] ("**एनएन ग्लोबल 2**") में 3:2 बहुमत से माना कि एनएन ग्लोबल 1 गलत था और एसएमएस टी एस्टेट्स में लिए गए दृष्टिकोण को बरकरार रखा । न्यायालय ने माना कि बिना मुहर वाला अनुबंध शून्य है (इसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं है) और इसलिए, बिना मुहर वाले अनुबंध में मध्यस्थता खंड लागू करने योग्य नहीं है। • बाद में, भास्कर राजू में सुधारात्मक याचिका पर सुनवाई करते हुए और एनएन ग्लोबल 2 में दिए गए फैसले के व्यापक प्रभाव और परिणामों पर विचार करते हुए , सुप्रीम कोर्ट ने मामले को सात न्यायाधीशों की पीठ को सौंप दिया। वर्तमान मामला (मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 और भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 के तहत मध्यस्थता समझौतों के बीच अंतरसंबंध) एनएन ग्लोबल 2 में संविधान पीठ के फैसले की सत्यता पर निर्णय लेने के लिए सात न्यायाधीशों की पीठ को संदर्भित करता है । **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बिना मुहर लगे या अपर्याप्त रूप से मुहर लगे अनुबंध में निहित मध्यस्थता समझौता या मध्यस्थता खंड वैध है और उस पर कार्रवाई की जा सकती है। न्यायालय ने यह भी माना कि जिस अनुबंध पर मुहर नहीं लगी है या जिस पर अपर्याप्त रूप से मुहर लगी है, वह शून्य नहीं है, बल्कि केवल साक्ष्य में अस्वीकार्य है। न्यायालय ने घोषित किया कि एनएन ग्लोबल 2 और एसएमएस टी एस्टेट्स में दिए गए निर्णय गलत थे । न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ द्वारा लिखा गया था। न्यायमूर्ति संजीव खन्ना ने एक अलग सहमति व्यक्त की। **निर्णय के कारण:** अस्वीकार्यता और शून्यता के बीच अंतर • सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि शून्य करार न्यायालय में लागू नहीं किया जा सकता, यानी इसे प्रभावी नहीं किया जा सकता, जबकि अग्राह्य दस्तावेज को न्यायालय में साक्ष्य के तौर पर पेश ही नहीं किया जा सकता । न्यायालय ने टिप्पणी की कि जहां भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 35 (" **स्टाम्प अधिनियम** ") स्टाम्प न लगे या अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगे दस्तावेज को साक्ष्य के तौर पर अग्राह्य बनाती है, वहीं स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्प न लगाने से दस्तावेज शून्य नहीं हो जाता। न्यायालय ने टिप्पणी की कि स्टाम्प शुल्क का भुगतान न करना एक सुधार योग्य दोष है, क्योंकि स्टाम्प अधिनियम स्वयं धारा 42(2) के तहत यह प्रावधान करता है कि एक बार अपेक्षित स्टाम्प शुल्क का भुगतान हो जाने पर, दस्तावेज साक्ष्य के तौर पर स्वीकार्य हो जाएगा। इसके विपरीत, न्यायालय ने टिप्पणी की कि ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है, जिससे शून्य करार को ठीक किया जा सके। न्यायिक हस्तक्षेप को न्यूनतम करना • सर्वोच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 ("**मध्यस्थता अधिनियम**") का एक मुख्य उद्देश्य मध्यस्थता प्रक्रिया में न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका को न्यूनतम करना है। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 5 में कहा गया है कि मध्यस्थता अधिनियम द्वारा कवर किए गए मामलों के लिए, कोई भी न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि कानून स्पष्ट रूप से इसकी अनुमति न दे। धारा 5 मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान न्यायिक हस्तक्षेप को सीमित करने के विधायी इरादे को दर्शाती है। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 न्यायालयों को आदेश देती है कि यदि प्रथम दृष्टया वैध मध्यस्थता समझौता है तो वे पक्षों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करें । पक्षों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करते समय,

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		न्यायालय पक्षों को मध्यस्थता समझौते की वैधता के बारे में सबूत पेश करने की अनुमति देकर मिनी-ट्रायल नहीं कर सकता। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 मध्यस्थों की नियुक्ति से संबंधित है, धारा 11 न्यायालयों को केवल तभी हस्तक्षेप करने की अनुमति देती है जब पक्ष मध्यस्थ नियुक्त करने में विफल होते हैं। मध्यस्थता संशोधन अधिनियम 2015 द्वारा जोड़ी गई धारा 11(6ए) में कहा गया है कि मध्यस्थ नियुक्त करते समय न्यायालय को मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व की जांच तक ही सीमित रहना चाहिए । न्यायालय ने पाया कि धारा 11(6ए) जोड़ने में विधानमंडल का इरादा रेफरल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के दायरे को केवल एक पहलू तक सीमित करना था - मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व। योग्यता-योग्यता का सिद्धांत • सर्वोच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि कोम्पेटेंज़-कोम्पेटेंज़ (जिसे सक्षमता क्षमता के रूप में भी जाना जाता है) का सिद्धांत बताता है कि मध्यस्थों को अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर निर्णय लेने का अधिकार है । सक्षमता-क्षमता का सिद्धांत मध्यस्थों को अंतर्निहित अनुबंध से उत्पन्न होने वाले सभी मुद्दों पर निर्णय लेने की अनुमति देता है, जिसमें मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व और वैधता शामिल है। भारतीय मध्यस्थता कानून में सक्षमता-क्षमता सिद्धांत को सुनिश्चित करते हुए, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 16 मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र पर निर्णय लेने का अधिकार देती है, जिसमें मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व या वैधता के संबंध में किसी भी आपत्ति पर निर्णय लेना शामिल है। • न्यायालय ने कहा कि एक बार मध्यस्थ किसी मामले पर निर्णय ले लेते हैं, तो मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 मध्यस्थ निर्णयों को रद्द करने के लिए आवेदन की अनुमति देती है। न्यायालय ने कहा कि एक आधार जिस पर मध्यस्थ पुरस्कार को रद्द किया जा सकता है, वह यह है कि मध्यस्थता समझौता कानून के तहत वैध नहीं है। यह दर्शाता है कि मध्यस्थता अधिनियम न्यायालय को मध्यस्थों को पहले मुद्दे पर निर्णय लेने का मौका दिए बिना मध्यस्थता समझौते की वैधता निर्धारित करने की अनुमति नहीं देता है। न्यायमूर्ति खन्ना ने अपनी अलग राय में कहा कि अंतर्निहित अनुबंध पर अपर्याप्त स्टाम्पिंग या गैर-स्टाम्पिंग से संबंधित आपत्ति का निर्णय मध्यस्थों द्वारा किया जा सकता है। स्टाम्प ड्यूटी पर मध्यस्थता अधिनियम की चुप्पी • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मध्यस्थता अधिनियम एक स्व-निहित संहिता है और इसलिए, अन्य कानूनों के प्रावधान मध्यस्थता अधिनियम के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं, जब तक कि अधिनियम विशेष रूप से इसकी अनुमति न दे। न्यायालय ने कहा कि संसद को मध्यस्थता अधिनियम लागू करते समय स्टाम्प अधिनियम के बारे में पता था, फिर भी, मध्यस्थता वैध मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व के लिए स्टाम्पिंग को पूर्व-शर्त के रूप में निर्दिष्ट नहीं करती है। स्टाम्प अधिनियम का उद्देश्य और उद्देश्य • न्यायालय ने कहा कि स्टाम्प अधिनियम सरकार के लिए राजस्व के हितों की रक्षा के लिए एक राजकोषीय कानून है, इसका उद्देश्य वादियों को तकनीकी हथियार से लैस करना नहीं है जिसके द्वारा वे किसी मामले के समाधान में देरी कर सकें । • न्यायालय ने माना कि मध्यस्थ स्टाम्प अधिनियम से बंधे होंगे और उनके पास स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने का अधिकार होगा। न्यायालय ने घोषित किया कि कानून की यह व्याख्या यह सुनिश्चित करती है कि मध्यस्थता अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी बनाया जाए, जबकि स्टाम्प अधिनियम के उद्देश्य से कोई कमी न आए। निर्णय देखें
2	**संविधान के अनुच्छेद 370 को निरस्त करने को चुनौती।**	**संविधान के अनुच्छेद 370 के संबंध में बनाम** **2023 INSC 1058** **(11 दिसंबर 2023)** WP(C) संख्या 1099/2019 **न्यायाधीश:** 1. मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, और न्यायमूर्ति सूर्यकांत 2. न्यायमूर्ति नथलापति वी. रमण, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति रामय्यागरी एस. रेड्डी, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, और न्यायमूर्ति सूर्य कांत 3. न्यायमूर्ति नथलापति वी. रमण, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति रामय्यागरी एस. रेड्डी, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, और न्यायमूर्ति सूर्य कांत 4. न्यायमूर्ति नथलापति वी. रमण, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति रामय्यागरी एस. रेड्डी, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, और न्यायमूर्ति सूर्य कांत **प्रश्न:** क्या भारत सरकार द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को निरस्त करना तथा जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में विभाजित करना संवैधानिक है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** 5. • **1947 से पहले, जम्मू और कश्मीर (" J&K ")** के क्षेत्र पर महाराजा हरि सिंह का शासन था। जब 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली, तो जम्मू और कश्मीर को यह चुनना था कि वह भारत के डोमिनियन या पाकिस्तान के डोमिनियन में से किसमें शामिल होना चाहता है। पाकिस्तान से सैन्य खतरे का सामना करते हुए, महाराजा हरि सिंह 1947 में विलय के एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करके भारत के डोमिनियन में शामिल हो गए। जून 1949 में, महाराजा ने अपनी शक्ति युवराज करण सिंह को

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		हस्तांतरित कर दी। नवंबर 1949 में, युवराज करण सिंह ने घोषणा की कि भारत का आगामी संविधान जम्मू और कश्मीर और भारत के बीच संवैधानिक संबंधों को नियंत्रित करेगा। • जब भारत का संविधान अपनाया गया था, तो जम्मू-कश्मीर को संविधान में एक राज्य के रूप में शामिल किया गया था। हालाँकि, पूरा भारतीय संविधान जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होता था। 1957 में, जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा ने जम्मू और कश्मीर का संविधान तैयार किया और उसे अपनाया ("**जम्मू-कश्मीर संविधान**")। भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर के बीच संबंधों को अनुच्छेद 370 में निर्धारित किया गया था। अनुच्छेद 370 (1) भारतीय संसद को जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार के "परामर्श" या "सहमति" के अधीन जम्मू-कश्मीर के लिए कानून बनाने की अनुमति देता है। • अनुच्छेद 370(3) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति जम्मू-कश्मीर संविधान सभा की सिफारिश पर "संवैधानिक आदेश" (" **सीओ** ") पारित करते हैं, तो अनुच्छेद 370 को समाप्त किया जा सकता है और संपूर्ण भारतीय संविधान जम्मू-कश्मीर पर लागू हो सकता है। हालाँकि, जम्मू-कश्मीर संविधान को अपनाने के बाद जम्मू-कश्मीर संविधान सभा को भंग कर दिया गया था और अनुच्छेद 370 को हटाने के लिए कोई सिफारिश नहीं की गई थी। • जून 2018 में, J&K के मुख्यमंत्री ने इस्तीफा दे दिया और नवंबर 2018 में, राज्यपाल ने J&K की विधानसभा को भंग कर दिया। एक महीने बाद, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत J&K में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। राष्ट्रपति शासन के तहत, राज्य का शासन भारत के राष्ट्रपति और भारतीय संसद को हस्तांतरित कर दिया गया था। अगस्त 2019 में, राष्ट्रपति ने CO 272 जारी किया, जिसने भारतीय संविधान के सभी प्रावधानों को J&K पर लागू किया। CO 272 में यह भी कहा गया कि अनुच्छेद 370 को J&K संविधान सभा के बजाय "राज्य विधानमंडल" की सिफारिश पर हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति ने तब CO 273 जारी किया, जिसने संसद की सिफारिश पर अनुच्छेद 370 को समाप्त कर दिया (राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने के कारण J&K के राज्य विधानमंडल के रूप में कार्य करना)। अंततः, संसद ने जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 (" **जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम** ") पारित किया, जिसने जम्मू और कश्मीर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों, केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर और केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख में विभाजित कर दिया। • याचिकाकर्ताओं ने सीओ 272, सीओ 273 और जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती दी। 6. • अक्टूबर 1947 में कश्मीर के महाराजा द्वारा भारत के साथ 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' के निष्पादन के बाद, भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 जोड़ा गया और जम्मू और कश्मीर राज्य (**"J&K"**) के संबंध में विशेष प्रावधान प्रदान किए गए। इस अनुच्छेद ने जम्मू और कश्मीर पर केंद्रीय संसद के विधायी अधिकार को प्रतिबंधित कर दिया। भारत का पूरा संविधान जम्मू और कश्मीर पर लागू नहीं था, और जम्मू और कश्मीर का अपना संविधान था। इसके अलावा, अनुच्छेद 370 (3) के अनुसार, जम्मू और कश्मीर की विशेष स्थिति को संशोधित या निरस्त नहीं किया जा सकता था, जब तक कि जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा इसकी सिफारिश न करे। • 20 दिसंबर 2018 को J&K में राष्ट्रपति शासन (राज्य आपातकाल) लगाया गया था। 5 अगस्त 2019 को, राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 370 के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में दो संविधान आदेश (" **सीओ** ") जारी किए गए थे। सीओ 272 ने भारत के संविधान के सभी प्रावधानों को J&K पर लागू कर दिया, और J&K के संविधान को अप्रचलित कर दिया। इसने J&K संविधान सभा के बजाय J&K के राज्य विधानमंडल की सिफारिश के आधार पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को हटाने की भी अनुमति दी। यह देखते हुए कि J&K राष्ट्रपति शासन के अधीन था, J&K राज्य विधानमंडल की शक्तियों का प्रयोग केंद्रीय संसद द्वारा किया गया था, जिसने अनुच्छेद 370 को निरस्त करने की सिफारिश की थी। • जबकि सीओ 272 और सीओ 273 की संवैधानिक वैधता को संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) के समक्ष चुनौती दी गई थी, प्रेम नाथ कौल (1959 आईएनएससी 17) और संपत प्रकाश (1968 आईएनएससी 265) के दो संविधान पीठ (पांच न्यायाधीश) के निर्णयों के बीच स्पष्ट संघर्ष के मद्देनजर एक बड़ी पीठ को संदर्भ मांगा गया था । ○ याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि प्रेम नाथ कौल में सुप्रीम कोर्ट ने माना था कि J&K पर भारत सरकार की संसदीय और राष्ट्रपति शक्तियां J&K संविधान सभा की अंतिम मंजूरी के अधीन थीं। इसलिए, याचिकाकर्ताओं के तर्क में, एक बार संविधान सभा भंग होने के बाद, अनुच्छेद 370 के तहत J&K के संबंध में सीओ पारित करने की भारत सरकार की शक्तियां प्रयोग करने योग्य नहीं रहीं क्योंकि ऐसे सीओ को मंजूरी देने के लिए कोई संविधान सभा नहीं थी। इसके बावजूद, संपत प्रकाश के बाद के फैसले ने J&K की संविधान सभा भंग होने के बाद J&K के संबंध में एक सीओ की वैधता को बरकरार रखा। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि प्रेम नाथ कौल और संपत प्रकाश एक-दूसरे के साथ संघर्ष में थे क्योंकि उन्होंने इस बात पर अलग-अलग विचार रखे कि क्या J&K के संबंध में सीओ जारी करने की राष्ट्रपति की शक्तियां J&K की संविधान सभा भंग होने के बाद भी प्रभावी रहती हैं। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** 7. • सुप्रीम कोर्ट ने याचिकाओं को खारिज कर दिया और अनुच्छेद 370 को खत्म करने तथा जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में पुनर्गठित करने के फैसले को बरकरार रखा। न्यायालय का फैसला मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने लिखा। न्यायमूर्ति संजय के. कौल और न्यायमूर्ति संजीव खन्ना ने अलग-अलग सहमति व्यक्त करते हुए राय लिखी। • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अनुच्छेद 370 एक "अस्थायी" प्रावधान था जिसे जम्मू-कश्मीर के सामने आने वाली विशेष परिस्थितियों के हल होने तक लागू किया गया था। न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति संविधान में अप्रत्यक्ष रूप से संशोधन करने के लिए संवैधानिक आदेश का उपयोग नहीं कर सकते हैं ताकि अनुच्छेद 370 को हटाने के लिए जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के बजाय राज्य विधानमंडल की सिफारिश पर शर्त लगाई जा सके। लेकिन इसने यह भी पाया कि अनुच्छेद 370(3) के तहत जम्मू-कश्मीर संविधान सभा की "सिफारिश" कभी भी भारत के राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती, जिनके पास हमेशा अनुच्छेद 370 को हटाने का अधिकार था। जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के विघटन के बाद, राष्ट्रपति जब भी उचित समझें अनुच्छेद 370 को समाप्त कर सकते हैं। न्यायालय ने यह भी माना कि जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम के पारित होने से अनुच्छेद 3 में राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं हुआ। भारत सरकार ने कहा कि केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		कश्मीर को फिर से एक राज्य बनाया जाएगा, और इस प्रकार न्यायालय ने जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में परिवर्तित करने की वैधता पर फैसला नहीं किया। • न्यायालय ने निर्देश दिया कि केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर के लिए विधानसभा चुनाव 30 सितंबर 2024 तक कराए जाएं। 8. ○ सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ (पांच जज) ने सर्वसम्मति से निष्कर्ष निकाला कि प्रेम नाथ कौल और संपत प्रकाश के फैसलों में कोई विरोधाभास नहीं है । इसलिए कोर्ट ने इस मुद्दे को बड़ी बेंच को भेजने से इनकार कर दिया। कोर्ट ने यह भी माना कि संपत प्रकाश का मामला गलत नहीं था क्योंकि वह प्रेम नाथ कौल के पहले के फैसले पर विचार करने में विफल रहा । इस फैसले ने अनुच्छेद 370 को खत्म करने की वैधता पर फैसला सात जजों की बड़ी बेंच के बजाय संविधान पीठ (पांच जजों) द्वारा किए जाने का रास्ता साफ कर दिया। **निर्णय के कारण:** कश्मीरी संप्रभुता • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि महाराजा हरि सिंह द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने और युवराज करण सिंह द्वारा यह घोषणा करने के बाद कि भारत का संविधान जम्मू-कश्मीर और भारत के बीच संवैधानिक संबंधों को नियंत्रित करेगा, जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग बन गया, जिसकी कोई अलग संप्रभुता नहीं है। न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि जम्मू-कश्मीर संविधान की धारा 3 में कहा गया है कि जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और धारा 3 को जम्मू-कश्मीर की राज्य सरकार द्वारा कभी नहीं बदला जा सकता। इस प्रकार, जबकि जम्मू-कश्मीर संविधान और अनुच्छेद 370 ने जम्मू-कश्मीर को अतिरिक्त "स्वायत्तता" दी, यह अभी भी भारतीय संविधान के तहत एक राज्य था। न्यायमूर्ति कौल की अलग राय में पाया गया कि जम्मू और कश्मीर राज्य ने जम्मू और कश्मीर संविधान के कारण संप्रभुता बरकरार रखी है अनुच्छेद 370 की अस्थायी प्रकृति • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अनुच्छेद 370 मूल रूप से राज्य में “विशेष परिस्थितियों” के समाप्त होने और जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के गठन तक एक अस्थायी उपाय के रूप में पारित किया गया था । अनुच्छेद 370 को संविधान के भाग XXI में अन्य अस्थायी अनुच्छेदों के साथ “अस्थायी और संक्रमणकालीन प्रावधान” कहा गया था। इसके अलावा, अनुच्छेद 370 के बगल में “सीमांत नोट” में “जम्मू और कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी प्रावधान” कहा गया था। संविधान सभा और राज्य विधानमंडल के बीच अंतर • सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि CO 272 का एक पैराग्राफ असंवैधानिक था क्योंकि इसमें अनुच्छेद 370 को अप्रत्यक्ष रूप से संशोधित करने का प्रयास किया गया था। CO 272 के पैराग्राफ 4 में कहा गया था कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा द्वारा राष्ट्रपति को अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की सिफारिश करने के बजाय, राज्य विधानमंडल वही सिफारिश कर सकता है। न्यायालय ने माना कि राज्य विधानमंडल और संविधान सभा बहुत अलग हैं, एक कानून पारित करता है और दूसरा संविधान बनाता है। इस प्रकार, “संविधान सभा” को “राज्य विधानमंडल” से बदलने का प्रयास करके, CO 272 का पैराग्राफ 4 संविधान को संशोधित करने का एक अप्रत्यक्ष और असंवैधानिक प्रयास था। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 370 समाप्त करने का अधिकार • हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि भारत के राष्ट्रपति के पास जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के अस्तित्व में न रहने के बाद भी अनुच्छेद 370 को एकतरफा तरीके से खत्म करने की शक्ति है। अनुच्छेद 370(3) के तहत अनुच्छेद 370 को पूरी तरह से खत्म करने के लिए जम्मू-कश्मीर संविधान सभा की “सिफारिश” की आवश्यकता थी। न्यायालय ने पाया कि “सहमति” का मतलब था कि जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार को भारत सरकार से सहमत होना था, “सिफारिश” के लिए केवल अनुच्छेद 370(3) के तहत जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के विचार को राष्ट्रपति के पास भेजना आवश्यक था। इस प्रकार, जम्मू-कश्मीर संविधान सभा की “सिफारिश” कभी भी राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती। जम्मू-कश्मीर संविधान को अपनाने के बाद जम्मू-कश्मीर संविधान सभा को भंग कर दिया गया था, लेकिन राष्ट्रपति के पास अनुच्छेद 370 को समाप्त करने की शक्ति बनी रही, जब भी जम्मू-कश्मीर में “विशेष परिस्थितियाँ” समाप्त हुईं और राष्ट्रपति ने सोचा कि यह उचित है। न्यायालय ने माना कि वह अनुच्छेद 370 को समाप्त करने के राष्ट्रपति के निर्णय की समीक्षा केवल तभी कर सकता है, जब यह बुरे इरादे से लिया गया हो, जो कि ऐसा नहीं था। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि राष्ट्रपति को जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं है, ताकि जम्मू-कश्मीर में संपूर्ण भारतीय संविधान लागू किया जा सके। इसने माना कि परामर्श केवल तभी आवश्यक है जब भारतीय संविधान के कुछ हिस्से जम्मू-कश्मीर पर लागू किए जा रहे हों, और जम्मू-कश्मीर के संविधान में सावधानीपूर्वक संशोधन किए जाने की आवश्यकता हो। लेकिन चूँकि 2019 में संपूर्ण भारतीय संविधान जम्मू-कश्मीर पर लागू किया जा रहा था, और जम्मू-कश्मीर के संविधान को पूरी तरह से भारतीय संविधान द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा था, इसलिए परामर्श की कोई आवश्यकता नहीं थी। संपूर्ण भारतीय संविधान के जम्मू-कश्मीर पर लागू होने के बाद, जम्मू-कश्मीर का संविधान निष्क्रिय हो जाता है। जम्मू और कश्मीर में राष्ट्रपति शासन के परिणाम • एसआर बोम्मई बनाम भारत संघ में नौ न्यायाधीशों के निर्णय ने पहले ही माना था कि राज्य में अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) लागू करने का राष्ट्रपति का निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन था। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि जम्मू-कश्मीर में राष्ट्रपति शासन लागू होने के दौरान अनुच्छेद 370 को निरस्त नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया और कहा कि राष्ट्रपति शासन के तहत सरकार की कार्रवाई को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका अपरिवर्तनीय प्रभाव है। हालांकि, न्यायालय ने यह भी माना कि राष्ट्रपति शासन लागू होने के दौरान की गई कार्रवाइयां इस आधार पर न्यायिक समीक्षा के अधीन थीं कि वे बुरे इरादे से की गई थीं या उनका राष्ट्रपति शासन लागू करने के कारणों से

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		कोई संबंध नहीं था। हालांकि, राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्य के रोजमर्रा के प्रशासन से संबंधित कार्रवाइयों को चुनौती नहीं दी जा सकती। राज्य का दो केंद्र शासित प्रदेशों में पुनर्गठन • संविधान का अनुच्छेद 3 संसद को कानून पारित करके राज्यों की सीमाओं को बदलने की अनुमति देता है। हालाँकि, अनुच्छेद 3 के तहत बनाए गए किसी भी कानून (जैसे कि J&K पुनर्गठन अधिनियम) को प्रभावित राज्यों के पास उसके विचार जानने के लिए भेजा जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि J&K पुनर्गठन अधिनियम के पारित होने से अनुच्छेद 3 का उल्लंघन नहीं हुआ क्योंकि: (i) किसी भी पुनर्गठन अधिनियम पर राज्य के विचार बाध्यकारी नहीं हैं; (ii) J&K में राष्ट्रपति शासन लागू होने के कारण J&K के विचार जानने की आवश्यकता निलंबित कर दी गई थी; और (iii) राष्ट्रपति शासन लागू होने के दौरान J&K की विधायिका के रूप में कार्य करने वाली संसद ने J&K पुनर्गठन अधिनियम पर सहमति व्यक्त की थी। न्यायालय ने माना कि राष्ट्रपति शासन के दौरान, संसद न केवल राज्य की ओर से कानून पारित कर सकती है, बल्कि राज्य के लिए पुनर्गठन अधिनियमों को मंजूरी देने जैसे अन्य संवैधानिक कार्य भी कर सकती है। • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि संविधान के अनुच्छेद 3 में संसद को किसी राज्य की भूमि से केंद्र शासित प्रदेश बनाने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार, न्यायालय ने लद्दाख केंद्र शासित प्रदेश के निर्माण को बरकरार रखा। इस सवाल पर कि क्या संसद किसी राज्य को समाप्त करके दो केंद्र शासित प्रदेश बना सकती है, न्यायालय ने भारत सरकार के इस कथन को दर्ज किया कि जम्मू-कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश को जल्द ही फिर से एक राज्य बनाया जाएगा। इस आश्वासन को देखते हुए, न्यायालय ने माना कि किसी राज्य को केंद्र शासित प्रदेश में परिवर्तित किया जा सकता है या नहीं, इस पर निर्णय लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। न्यायालय ने निर्देश दिया कि जम्मू-कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश में 30 सितंबर 2024 तक चुनाव करवाए जाने चाहिए। न्यायमूर्ति खन्ना की पृथक राय में कहा गया कि किसी राज्य को केंद्र शासित प्रदेश में परिवर्तित करना संघवाद में हस्तक्षेप है और ऐसा केवल बाध्यकारी कारणों से ही किया जाना चाहिए। निर्णय देखें
3	**जिन पक्षों ने मध्यस्थता समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, उन्हें भी मध्यस्थता में पक्ष बनाया जा सकता है।**	**कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड बनाम सैप इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** **2023 आईएनएससी 1051** **(6 दिसंबर 2023)** मध्यस्थता याचिका संख्या 38/2020 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय, न्यायमूर्ति पमिदिघनतम एस. नरसिम्हा, न्यायमूर्ति जमशेद बी. पारदीवाला और न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा **प्रश्न:** **(i)** क्या अनुबंध पर हस्ताक्षर न करने वाले पक्षों को उस अनुबंध से संबंधित मध्यस्थता में पक्ष बनाया जा सकता है? यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में उन्हें पक्ष बनाया जा सकता है? **(ii)** क्या कंपनी समूह सिद्धांत ("**जीओसी सिद्धांत**") भारतीय मध्यस्थता कानून में वैध और लागू है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • दिसंबर 2020 में याचिकाकर्ता (कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड) ने SAP इंडिया प्राइवेट लिमिटेड ("**SAP इंडिया**") के साथ एक सॉफ्टवेयर लाइसेंसिंग समझौता किया। समझौते के तहत याचिकाकर्ता को सॉफ्टवेयर का लाइसेंसी बनाया गया था जिसे SAP इंडिया द्वारा विकसित और स्वामित्व किया गया था। • 2015 में, जब याचिकाकर्ता अपना खुद का ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म विकसित करने की प्रक्रिया में था, तब SAP इंडिया ने याचिकाकर्ता को अपने सॉफ्टवेयर, हाइब्रिस सॉल्यूशन की सिफारिश की। दोनों कंपनियों द्वारा तीन नए समझौते किए गए, जिनमें से एक 'सामान्य नियम और शर्तें समझौता' था जिसमें मध्यस्थता खंड शामिल था। • सॉफ्टवेयर को लागू करने में कठिनाइयों का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता ने जर्मनी में स्थित SAP इंडिया की मूल कंपनी SAP SE से सहायता मांगी। हालाँकि, परियोजना को असफलताओं का सामना करना पड़ा और अंततः नवंबर 2016 में याचिकाकर्ता द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने 45 करोड़ रुपये की वापसी की मांग की। जवाब में, SAP इंडिया ने गलत समाप्ति का दावा किया और 17 करोड़ रुपये की मांग की। याचिकाकर्ता ने SAP इंडिया और SAP SE दोनों को मध्यस्थता शुरू करने के लिए नोटिस भेजे। हालाँकि, SAP SE किसी भी समझौते पर हस्ताक्षरकर्ता नहीं था। • एसएपी इंडिया ने मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 ("**मध्यस्थता अधिनियम**") की धारा 11 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करते हुए सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि एसएपी एसई ने परियोजना की पूरी जिम्मेदारी लेते हुए, समझौते से बंधे रहने के लिए निहित रूप से सहमति व्यक्त की। इसके अलावा, एसएपी इंडिया पूरी तरह से एसएपी एसई के स्वामित्व में था। मध्यस्थता समझौते में गैर-हस्ताक्षरकर्ता को शामिल करने की इस कानूनी अवधारणा को कंपनी समूह सिद्धांत के रूप में मान्यता प्राप्त है। कानूनी मुद्दे के महत्व को देखते हुए, सुप्रीम कोर्ट की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने मामले को एक संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) को सौंप दिया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय मध्यस्थता कानून में कंपनियों के समूह सिद्धांत की वैधता की पुष्टि की, यह निर्णय देते हुए कि कॉर्पोरेट समूह के भीतर की कंपनियाँ, भले ही मध्यस्थता समझौते पर स्पष्ट हस्ताक्षरकर्ता न हों, समझौते से बाध्य हो सकती हैं। इस बारे में कि गैर-हस्ताक्षरकर्ता कब बाध्य हो सकते हैं, न्यायालय ने निर्णय दिया कि ऐसे निर्धारणों को मामले-दर-मामला

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		आधार पर मध्यस्थ न्यायाधिकरणों की क्षमता पर छोड़ दिया जाना चाहिए। न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड़ द्वारा लिखा गया था, जिसमें न्यायमूर्ति पीएस नरसिम्हा ने सहमति व्यक्त की थी। **निर्णय के कारण:** गैर-हस्ताक्षरकर्ता मध्यस्थता समझौते में पक्ष हो सकते हैं • सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मध्यस्थता में पक्षों की पहचान करने का प्राथमिक तरीका मध्यस्थता समझौते पर हस्ताक्षर करने वालों को देखना है, लेकिन यह गैर-हस्ताक्षरकर्ताओं को मध्यस्थता में पक्षकार मानने से नहीं रोकता है। यहां तक कि जिन पक्षों ने मध्यस्थता समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, वे भी कानूनी संबंध में प्रवेश करने और अन्य कार्रवाइयों के माध्यम से मध्यस्थता समझौते से बंधे रहने के लिए अपनी मंशा और सहमति प्रदर्शित कर सकते हैं। परीक्षण यह आकलन करने में निहित है कि क्या इन गैर-हस्ताक्षरकर्ताओं का मध्यस्थता समझौते के पक्षों के साथ कानूनी संबंध स्थापित करने का इरादा था। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि लिखित मध्यस्थता समझौता अनिवार्य है, लेकिन रिकॉर्डिंग का स्वरूप अप्रासंगिक। मध्यस्थता अधिनियम की धारा 7 के तहत, किसी समझौते को लिखित रूप में तब माना जाता है जब पक्षकार औपचारिक रूप से उस पर हस्ताक्षर करते हैं, जब उनकी सहमति के दस्तावेजी सबूत होते हैं, या जब दावों और बचाव के आदान-प्रदान से इसके अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि इन परिस्थितियों में सामान्य लक्ष्य मध्यस्थता समझौते से बंधे रहने के पक्षों के आपसी इरादे का पता लगाना है। हस्ताक्षरकर्ता होना आवश्यक नहीं है।। भारत में लागू कंपनी समूह सिद्धांत • सर्वोच्च न्यायालय ने 'कंपनियों के समूह' को विभिन्न व्यवसायों में निजी और सार्वजनिक रूप से स्वामित्व वाली फर्मों के समूह के रूप में परिभाषित किया है। भले ही प्रत्येक फर्म एक स्वतंत्र कानूनी इकाई है, लेकिन वे सभी एक सामान्य प्राधिकरण का पालन करते हैं, और विश्वास-आधारित संबंधों से जुड़े होते हैं। • जीओसी सिद्धांत 'कंपनियों के समूह' के भीतर एक गैर-हस्ताक्षरकर्ता कंपनी को अपनी संबद्ध कंपनियों द्वारा किए गए मध्यस्थता समझौते से लाभ उठाने या उससे बंधे रहने की अनुमति देता है। यह तब लागू होता है जब परिस्थितियाँ इंगित करती हैं कि सभी पक्ष, हस्ताक्षरकर्ता और गैर-हस्ताक्षरकर्ता दोनों, समझौते से बंधे रहने का इरादा रखते हैं। जीओसी सिद्धांत एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है, सभी निकट से जुड़े पक्षों को एक ही मंच पर एकत्रित करता है, जो विशेष रूप से कई समझौतों और पक्षों से जुड़े विवादों में उपयोगी है। इसके अलावा, न्यायालय ने स्पष्ट किया कि 'कंपनियों के समूह' का अस्तित्व एक तथ्य का प्रश्न है, जिसका मूल्यांकन न्यायालयों को करना होता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस सिद्धांत को लागू करते समय निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाना चाहिए: (i) पक्षों की पारस्परिक मंशा (ii) गैर-हस्ताक्षरकर्ता का उस पक्ष से संबंध जो समझौते का हस्ताक्षरकर्ता है (iii) विषय-वस्तु की समानता (iv) लेनदेन की समग्र प्रकृति, और (v) अनुबंध का प्रदर्शन। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि गैर-हस्ताक्षरकर्ता को शामिल करने के लिए, किसी पक्ष को गैर-हस्ताक्षरकर्ता की सचेत और जानबूझकर भागीदारी को प्रदर्शित करने वाले मजबूत सबूत पेश करने चाहिए। केवल यह दिखाना कि कंपनियाँ एक ही आर्थिक इकाई के रूप में एक साथ काम करती हैं, पर्याप्त नहीं है; उन्हें एक सामान्य परियोजना पर सक्रिय रूप से सहयोग करना चाहिए। इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि जीओसी सिद्धांत भारतीय मध्यस्थता कानून में स्वतंत्र रूप से मौजूद है, जो किसी समझौते में पक्षों के आपसी इरादे के सिद्धांत पर आधारित है । रेफरल चरण में न्यायालय द्वारा निर्धारण का मानक • सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 8 के तहत न्यायालय को यह आकलन करने के लिए प्रारंभिक जांच करने की आवश्यकता होती है कि क्या मध्यस्थता समझौता वैध है, और धारा 11 सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को मध्यस्थों की नियुक्ति करने की अनुमति देती है यदि पक्षकार नियुक्ति की सहमत प्रक्रिया का पालन नहीं करते हैं। न्यायालय दो स्थितियों में समझौते की वैधता और इसमें शामिल पक्षों पर निर्णय लेगा: पहला, जब हस्ताक्षरकर्ता किसी गैर-हस्ताक्षरकर्ता को मध्यस्थता में शामिल करना चाहता है, और दूसरा, जब गैर-हस्ताक्षरकर्ता स्वयं इसमें शामिल होना चाहता है। हालांकि, जटिल सौदों के लिए, न्यायालय के बजाय मध्यस्थ न्यायाधिकरणों के लिए यह तय करना बेहतर है कि क्या कोई गैर-हस्ताक्षरकर्ता वास्तव में मध्यस्थता समझौते का हिस्सा है। यह मध्यस्थता अधिनियम की धारा 16 के अनुरूप है, जो न्यायाधिकरण को अपना अधिकार स्वयं तय करने की अनुमति देता है। निर्णय देखें
4	**क्या राज्यपाल किसी विधेयक पर कार्रवाई रोक सकता है तथा विधानसभा अध्यक्ष की विधानसभा का सत्र पुनः बुलाने की शक्ति।**	**पंजाब राज्य बनाम पंजाब के राज्यपाल के प्रधान सचिव** **2023 आईएनएससी 1017** **(10 नवंबर 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 1224/2023 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश डॉ. धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति जमशेद बी. पारदीवाला, न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा **प्रश्न:** **(i)** क्या राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर कार्यवाही रोक सकता है। **(ii)** क्या अध्यक्ष के लिए विधान सभा सत्र को पुनः बुलाना अनुमेय है, जिसे अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है, किन्तु स्थगित नहीं किया गया है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:**

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• 22 फरवरी 2023 को पंजाब सरकार के मंत्रिपरिषद ने पंजाब के राज्यपाल को एक सिफारिश भेजी जिसमें 3 मार्च 2023 से शुरू होने वाले बजट सत्र के लिए पंजाब विधानसभा को बुलाने की मांग की गई। राज्यपाल ने ऐसा करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि वह कानूनी सलाह ले रहे हैं। इसके कारण पंजाब राज्य और पंजाब के राज्यपाल के बीच मुकदमेबाजी का पहला दौर शुरू हुआ। 28 फरवरी 2023 को सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद, उन्होंने विधानसभा को बुलाया और 3 मार्च 2023 को बजट सत्र बुलाया गया। • पंजाब विधानसभा का बजट सत्र 23 मार्च 2023 को अध्यक्ष द्वारा अनिश्चित काल के लिए स्थगित (अनिर्दिष्ट अवधि के लिए बर्खास्त) कर दिया गया था। विधानसभा को फिर से बुलाया गया और 19 और 20 जून 2023 को चार विधेयक पारित किए गए। राज्यपाल ने इन विधेयकों की वैधता पर संदेह व्यक्त किया और कहा कि सत्र बुलाना अवैध था, विधायिका की स्वीकृत प्रक्रियाओं और अभ्यास के खिलाफ था, और संविधान के प्रावधानों के खिलाफ था। • पंजाब के राज्यपाल द्वारा चार विधेयकों के संबंध में कोई कार्रवाई न किए जाने के कारण मुकदमेबाजी का वर्तमान दूसरा दौर शुरू हो गया है। राज्यपाल ने न तो इन विधेयकों को मंजूरी दी थी और न ही 6 नवंबर 2023 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा याचिका स्वीकार किए जाने तक इन्हें वापस किया गया था। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने याचिका स्वीकार करते हुए कहा कि राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर अनिश्चित काल तक कार्यवाही रोक नहीं सकते। न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि अध्यक्ष विधान सभा का सत्र फिर से बुला सकते हैं, जिसे स्थगित नहीं किया गया है। न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने लिखा था। **निर्णय के कारण:** अनिश्चित काल तक स्वीकृति रोकने की शक्ति नहीं • सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 200 का हवाला दिया, जिसमें कहा गया है कि राज्यपाल को या तो विधेयक को मंजूरी देनी चाहिए या इसे "जितनी जल्दी हो सके" विधानमंडल को वापस करना चाहिए। न्यायालय ने माना कि "जितनी जल्दी हो सके" अभिव्यक्ति में एक महत्वपूर्ण संवैधानिक तत्व है और यह बताता है कि राज्यपाल को विधेयक पारित होने के बाद किस तरह से कार्य करना चाहिए। अनिश्चित समय के लिए विधेयकों पर कार्रवाई न करना "जितनी जल्दी हो सके" वाक्यांश और अनुच्छेद 200 के अधिदेश के साथ असंगत है। संविधान में यह भाषा विधान बनाने की शक्ति से जुड़े महत्व को ध्यान में रखते हुए है जो पूरी तरह से राज्य विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र में है।। • सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि यदि राज्यपाल अनुच्छेद 200 के तहत सहमति वापस लेने का फैसला करते हैं, तो तार्किक कार्रवाई यह है कि विधेयक को पुनर्विचार के लिए राज्य विधानमंडल को वापस भेज दिया जाए। अनिश्चित काल के लिए स्थगित होने के बाद विधानसभा को पुनः बुलाने की अनुमति है • सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना कि पंजाब विधानसभा की प्रक्रिया के नियमों का नियम 16 ऐसी स्थिति को मान्यता देता है, जिसमें अध्यक्ष विधानसभा की बैठक को फिर से बुलाता है, जिसे अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है , लेकिन स्थगित नहीं किया गया है । इसने रामदास अठावले बनाम भारत संघ (2010 आईएनएससी 177) का संदर्भ दिया, जिसमें यह माना गया था कि स्थगन एक ही सत्र के दौरान एक व्यवधान है, जबकि सत्रावसान एक सत्र को समाप्त करता है। • न्यायालय ने पाया कि देश की विभिन्न विधानसभाओं में स्थापित विधायी प्रथा सदन के सत्र को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने और सत्रावसान के बीच अंतर करती है। इसलिए, अध्यक्ष को पंजाब विधानसभा को फिर से बुलाने का अधिकार है क्योंकि इसे केवल स्थगित किया गया था, सत्रावसान नहीं किया गया था। निर्णय देखें
5	दिल्ली के उपमुख्यमंत्री द्वारा जमानत याचिका दायर की गई।	**मनीष सिसोदिया बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो** **2023 आईएनएससी 956** **(30 अक्टूबर 2023)** सीआरएलए संख्या 3352/2023 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति संजीव खन्ना और न्यायमूर्ति सरसा वीएन भट्टी **प्रश्न:** क्या मनीष सिसोदिया ("**अपीलकर्ता**") जमानत का हकदार है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • अपीलकर्ता दिल्ली के पूर्व उपमुख्यमंत्री और आबकारी मंत्री थे। उन्हें दिल्ली शराब आबकारी नीति 2021-22 ("आबकारी नीति") से संबंधित जांच के सिलसिले में क्रमशः 26 फरवरी 2023 और 9 मार्च 2023 को केंद्रीय जांच ब्यूरो ("**सीबीआई**") और प्रवर्तन निदेशालय ("**ईडी**") द्वारा गिरफ्तार किया गया और हिरासत में लिया गया। • सीबीआई ने दो आरोपपत्र दाखिल किए, जिनमें अपीलकर्ता पर भारतीय दंड संहिता, 1860 ("**आईपीसी") की धारा 201 (सबूतों को गायब करना) और 420 (धोखाधड़ी) तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 ("पीसीए")** की धारा 7, 7ए, 8 और 12 (रिश्वत लेना और देना) के तहत अपराध का आरोप लगाया गया। ईडी ने अपीलकर्ता पर धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 ("**पीएमएलए**") के तहत धन शोधन का आरोप लगाते हुए एक आपराधिक शिकायत दर्ज की। • आरोपों का सार यह था कि अपीलकर्ता ने दिल्ली के लिए एक नई शराब आबकारी नीति तैयार करके एक लोक सेवक के रूप में अपने अधिकार का दुरुपयोग किया था, जिसमें अपीलकर्ता और उसके सहयोगियों को रिश्वत और कमीशन के बदले में कुछ थोक वितरकों को लाभ पहुँचाया गया था। सीबीआई और ईडी ने तर्क दिया कि ये रिश्वत लगभग एक सौ करोड़ रुपये की थी और इसे अपीलकर्ता ने अपने राजनीतिक दल के समर्थन में इस्तेमाल किया।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• अपीलकर्ता को दोनों मामलों (सीबीआई और ईडी के) में ट्रायल कोर्ट और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा जमानत देने से इनकार कर दिया गया था। अपीलकर्ता ने जमानत के लिए सुप्रीम कोर्ट में अपील की। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने पीएमएलए के तहत अपराधों के संबंध में ईडी द्वारा दायर आरोपपत्र में गंभीर आरोपों के मद्देनजर अपीलकर्ता को जमानत देने से इनकार कर दिया, जिन्हें अदालत ने पाया कि सबूतों द्वारा अस्थायी रूप से समर्थित थे। हालांकि, अदालत ने स्पष्ट रूप से कहा कि अदालत ने पाया कि सभी विवादित तथ्यात्मक और कानूनी मुद्दे खुले हैं और ट्रायल कोर्ट के समक्ष सुनवाई में उनका फैसला किया जाएगा। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति खन्ना द्वारा लिखा गया था। • सुप्रीम कोर्ट ने अपीलकर्ता को परिस्थितियों में बदलाव होने या अगले तीन महीनों में मुकदमा धीमी गति से आगे बढ़ने की स्थिति में नई ज़मानत याचिका दायर करने की आज़ादी दी। कोर्ट ने अपीलकर्ता को किसी भी मेडिकल या व्यक्तिगत या पारिवारिक आपात स्थिति के मामले में अंतरिम ज़मानत याचिका दायर करने की भी अनुमति दी। **निर्णय के कारण:** पीएमएलए के तहत जमानत देने के लिए पालन किए जाने वाले कानूनी सिद्धांत • सुप्रीम कोर्ट ने विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ [2022 INSC 757] (“**विजय मदनलाल”)** के मामले का हवाला दिया, जिसमें पीएमएलए के तहत जमानत देने के मानक को स्पष्ट किया गया था। विजय मदनलाल के अनुसार , जमानत देने के लिए, अदालत को विस्तृत कारण बताने या साक्ष्य की विस्तार से जांच करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उचित आधार पर एक अस्थायी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि आरोपी पीएमएलए के तहत अपराध का दोषी नहीं है। अदालत ने वर्तमान जमानत आवेदन पर निर्णय लेने में विजय मदनलाल द्वारा निर्धारित आदेश का पालन किया। अपीलकर्ता को जमानत देने से इनकार करने के आधार • सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि आबकारी नीति में किए गए बदलावों के कारण अवैध लाभ से संबंधित ईडी की आपराधिक शिकायत में लगाए गए आरोप तथ्यों और साक्ष्यों द्वारा अस्थायी रूप से समर्थित हैं। विशेष रूप से, यह इस तथ्य से संबंधित है कि कुछ थोक वितरकों ने कथित तौर पर नई आबकारी नीति के तहत सरकारी खजाने और आम जनता की कीमत पर अत्यधिक लाभ कमाया था। अतिरिक्त अवलोकन • सुप्रीम कोर्ट ने अपीलकर्ता द्वारा जेल में काटे जाने की लंबी अवधि के बारे में अपनी चिंता को उजागर किया। इस बात पर जोर देते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत त्वरित सुनवाई का अधिकार एक मौलिक अधिकार है, कोर्ट ने स्पष्ट किया कि किसी अभियुक्त को पीएमएलए के तहत जमानत दिए जाने से पहले उस अपराध के लिए निर्दिष्ट अवधि तक कारावास में रहने का इंतजार नहीं करना चाहिए जिसका उस पर आरोप लगाया गया है। • सुप्रीम कोर्ट ने सीबीआई के इस आश्वासन पर भी भरोसा किया कि मुकदमा छह से आठ महीने के भीतर पूरा हो जाएगा और कहा कि अगर इस समय के भीतर मामले का फैसला नहीं हुआ, तो अपीलकर्ता को जमानत दी जा सकती है । कोर्ट ने आगे कहा कि अगर तीन महीने के बाद भी मुकदमा धीमी गति से आगे बढ़ रहा है, तो अपीलकर्ता जमानत के लिए फिर से आवेदन कर सकता है। निर्णय देखें
6	**मैनुअल स्कैवेंजिंग को समाप्त करने के लिए निर्देश।**	**डॉ. बलराम सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** **2023 आईएनएससी 950** **(20 अक्टूबर 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 324/2020 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति श्रीपति आर भट्ट, न्यायमूर्ति अरविंद कुमार **प्रश्न:** मैनुअल स्कैवेंजर्स के रोजगार और शुष्क शौचालयों के निर्माण (निषेध) अधिनियम, 1993 (“ मैनुअल **स्कैवेंजर्स रोजगार अधिनियम, 1993** ”) और मैनुअल स्कैवेंजर्स के रूप में रोजगार का निषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम, 2013 (“**मैनुअल स्कैवेंजर्स पुनर्वास अधिनियम, 2013**”) के कार्यान्वयन की मांग करने वाली याचिका। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका दायर की गई थी, जिसमें प्रतिवादियों (भारत संघ और सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों) को मैनुअल स्कैवेंजर रोजगार अधिनियम, 1993 और मैनुअल स्कैवेंजर पुनर्वास अधिनियम, 2013 के प्रावधानों को लागू करने के निर्देश देने की मांग की गई थी। मैनुअल स्कैवेंजर रोजगार अधिनियम, 1993 को मैनुअल स्कैवेंजरों के रोजगार और शुष्क शौचालयों के निर्माण पर रोक लगाने के लिए अधिनियमित किया गया था। मैनुअल स्कैवेंजर पुनर्वास अधिनियम, 2013 को पहले मैनुअल स्कैवेंजिंग में लगे व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए अधिनियमित किया गया था। • याचिकाकर्ता का दावा है कि इन कानूनों के बावजूद, मैनुअल स्कैवेंजिंग जारी है, क्योंकि प्रतिवादी इन कानूनों के आवश्यक प्रावधानों को लागू करने में विफल रहे हैं, जैसे कि सभी जिलों में मैनुअल स्कैवेंजरों की पहचान के लिए सर्वेक्षण आयोजित करने में विफलता। याचिकाकर्ता ने मैनुअल स्कैवेंजिंग पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाने की मांग की, साथ ही साथ इन प्रथाओं में शामिल लोगों के लिए पर्याप्त पुनर्वास और रोजगार के अवसर सुनिश्चित करने की भी मांग की। • प्रतिवादी ने तर्क दिया कि मैनुअल स्कैवेंजर्स रिहैबिलिटेशन एक्ट, 2013 में केंद्र सरकार द्वारा मैनुअल स्कैवेंजर्स का राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण अनिवार्य नहीं है। इसके बजाय, इसमें स्थानीय निकायों द्वारा स्थानीय सर्वेक्षण की आवश्यकता है। यह रेखांकित

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		किया गया कि सरकार ने 2013 में सर्वेक्षण करने के लिए लगभग दस करोड़ रुपये खर्च किए, जिसके बाद पहचाने गए मैनुअल स्कैवेंजर्स को लगभग 55 करोड़ रुपये का मुआवजा दिया गया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार को निर्देश दिया कि वह मैनुअल सीवर सफाई को चरणबद्ध तरीके से खत्म करे, इसके लिए नीतियां बनाए और निगमों, रेलवे, छावनी और अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली एजेंसियों सहित सभी संबंधित निकायों को निर्देश जारी करे। इसके अतिरिक्त, उसे यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करने चाहिए कि आउटसोर्स किए गए सीवर सफाई कार्यों के लिए किसी भी कारण से लोगों को सीवर में प्रवेश करने की आवश्यकता न पड़े। • राज्य सरकारों को निर्देश दिया गया कि वे अपनी नीतियों को संघ के दिशा-निर्देशों के अनुरूप बनाएं, ताकि सीवेज कर्मियों और उनके परिवारों के लिए व्यापक पुनर्वास उपाय उपलब्ध कराए जा सकें। न्यायालय ने सीवर में होने वाली मौतों और विकलांगताओं के लिए मुआवजे में उल्लेखनीय वृद्धि की आवश्यकता पर प्रकाश डाला, साथ ही ठेकेदारों की जवाबदेही के लिए तंत्र की आवश्यकता पर भी जोर दिया। सीवर में होने वाली मौतों के लिए मुआवजे की राशि बढ़ाकर तीस लाख कर दी गई। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने पीड़ितों के आश्रितों के लिए शैक्षिक छात्रवृत्ति की स्थापना और नीति कार्यान्वयन में कानूनी अधिकारियों के समन्वय का निर्देश दिया। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति भट द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** अधिनियम की मुक्तिदायी प्रकृति • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मैनुअल स्कैवेंजर्स पुनर्वास अधिनियम, 2013 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 15, 17, 23 और 24 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को आगे बढ़ाने के लिए अधिनियमित किया गया था, ताकि दमनकारी सामाजिक संरचनाओं से हटकर सम्मानजनक रोजगार की ओर कदम बढ़ाया जा सके। मैनुअल स्कैवेंजर्स पुनर्वास अधिनियम, 2013 की धारा 6(2) के साथ धारा 11(7) व्यक्तियों को मैनुअल स्कैवेंजिंग की प्रथा से मुक्त करती है। इसलिए अधिनियम की व्याख्या भाईचारे को बढ़ावा देने और व्यक्ति की गरिमा को आश्वस्त करने के लिए की जानी चाहिए। सर्वेक्षणों की अपर्याप्तता/डेटा की अशुद्धि • सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि 2013, 2018 और बाद के वर्षों में सर्वेक्षणों से एकत्र किए गए डेटा में विसंगतियां और विरोधाभास हैं, जो सर्वेक्षणों की विश्वसनीयता को कम करते हैं। छावनी बोर्डों के डेटा से पता चलता है कि अस्वास्थ्यकर शौचालयों में काम करने वाले मैनुअल स्कैवेंजरों की पहचान करने में विफलता, मैनुअल स्कैवेंजिंग की वास्तविक सीमा को पकड़ने में सर्वेक्षणों की कमियों को उजागर करती है। इसके अलावा, राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग ने 2015-16 से मैनुअल स्कैवेंजरों पर डेटा की सटीकता के बारे में लगातार चिंता जताई है, जो विश्वसनीय आंकड़ों की कमी और प्रामाणिक डेटा संग्रह की आवश्यकता को दर्शाता है। समितियों एवं संस्थाओं का गठन न होना • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संस्थागत कमियाँ, जैसे कि राज्य आयोगों सहित 2013 अधिनियम द्वारा अनिवार्य किए गए प्रमुख निकायों का गैर-गठन और गैर-कार्यशील होना, अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा डालते हैं। कार्यान्वयन प्रयासों के समन्वय और निगरानी का कार्य करने वाली केंद्रीय निगरानी समिति नियमित रूप से बैठक करने में विफल रही है। पुनर्वास प्रयासों की देखरेख और अनुपालन की निगरानी के लिए महत्वपूर्ण सतर्कता समितियाँ, कई राज्यों में या तो मौजूद नहीं हैं या गैर-कार्यात्मक हैं। • न्यायालय ने माना कि राज्य और जिला स्तर पर सर्वेक्षण समितियों का गठन न होने से मैनुअल स्कैवेंजरों की पहचान करने और प्रभावी पुनर्वास योजना तैयार करने के लिए व्यापक सर्वेक्षण करने में बाधा उत्पन्न होती है । पुनर्वास के लिए व्यापक दृष्टिकोण • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पुनर्वास की दिशा में पहला कदम वास्तविक और निर्विवाद सर्वेक्षण के माध्यम से मैनुअल स्कैवेंजरों की पहचान करना है। परिवार के उत्थान के लिए अकेले आर्थिक उपाय पर्याप्त नहीं हैं; पुनर्वास के लिए छात्रवृत्ति जैसे दीर्घकालिक और अल्पकालिक सामाजिक-आर्थिक उपायों का संयोजन आवश्यक है । निर्णय देखें
7	**क्या LGBTQIA+ समुदाय के सदस्यों को विवाह का अधिकार है।**	**सुप्रियो @ सुप्रिया चक्रवर्ती बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** **2023 आईएनएससी 920** **(17 अक्टूबर 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) नंबर 1011/2022 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति श्रीपति आर. भट्ट, न्यायमूर्ति हिमा कोहली, न्यायमूर्ति पमिदिघनतम एस. नरसिम्हा **प्रश्न:** **(i)** क्या समलैंगिक, उभयलिंगी, ट्रांसजेंडर, क्वीर और इंटरसेक्स ("**LGBTQIA+**") समुदाय के सदस्यों को विवाह का अधिकार है? यदि हाँ, तो क्या भारत का सर्वोच्च न्यायालय इस आशय की घोषणा कर सकता है? **(ii)** क्या विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के तहत LGBTQIA+ विवाहों को शामिल न करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत असंवैधानिक भेदभाव है? **(iii)** क्या LGBTQIA+ समुदाय के सदस्यों को नागरिक संघ बनाने का अधिकार है, और क्या राज्य का ऐसे नागरिक संघों को कानूनी रूप से मान्यता देने का कर्तव्य है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:**

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• दो समलैंगिक जोड़ों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर समलैंगिक विवाह को कानूनी मान्यता देने की मांग की। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि विशेष विवाह अधिनियम, 1954 ("**एसएमए**") की धारा 4(सी) , जो विवाह को एक पुरुष और एक महिला के बीच मिलन के रूप में परिभाषित करती है, असंवैधानिक है क्योंकि यह समलैंगिक जोड़ों के साथ भेदभाव करता है और उन्हें विवाह के आवश्यक लाभों से वंचित करता है। इसमें गोद लेने और सरोगेसी जैसे अवसर और उत्तराधिकार कानूनों और बीमा पॉलिसियों के तहत लाभ शामिल हैं। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि समलैंगिक विवाह को मान्यता न देकर सरकार समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा के उनके मौलिक अधिकार का उल्लंघन कर रही है। • भारत संघ (प्रतिवादी) ने तर्क दिया कि विवाह एक सामाजिक संस्था है जो परंपरा, व्यक्तिगत कानून और धर्म से निकलती है और इसे सामाजिक स्वीकार्यता की आवश्यकता होती है, और केवल विषमलैंगिक विवाहों को ही ऐसी स्वीकार्यता प्राप्त है। भारत संघ ने तर्क दिया कि संविधान विवाह करने के मौलिक अधिकार को मान्यता नहीं देता है। इसके अलावा, एसएमए भेदभावपूर्ण नहीं है, क्योंकि संसद ने इसके अधिनियमन के दौरान कभी भी गैर-विषमलैंगिक संघों को शामिल करने पर विचार नहीं किया। इसके अलावा, संघ ने तर्क दिया कि गैर-विषमलैंगिक जोड़ों को कवर करने के लिए एसएमए की व्याख्या करने से बेतुके और अव्यवहारिक परिणाम सामने आएंगे और गोद लेने, उत्तराधिकार, सरोगेसी और रखरखाव से संबंधित विभिन्न अन्य क़ानूनों पर असर पड़ेगा, जिन्हें एक पुरुष और एक महिला के बीच एक संघ के रूप में माना जाता है। केवल संसद के पास ही ऐसा बदलाव लाने का अधिकार है। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) ने चार राय लिखीं। सभी पांच न्यायाधीशों ने पाया कि संविधान के तहत विवाह करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। सभी पांच न्यायाधीशों ने आगे कहा कि विशेष विवाह अधिनियम, 1954 केवल पुरुष और महिला के बीच विवाह की अनुमति देता है और इसे गैर-विषमलैंगिक विवाहों को कवर करने के लिए व्याख्या नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह न्यायालय की भूमिका से परे कानून का व्यापक पुनर्लेखन होगा। हालांकि, न्यायालय ने एसएमए को असंवैधानिक नहीं माना। • तीन न्यायाधीशों (मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति भट और न्यायमूर्ति कोहली) के बहुमत ने स्पष्ट रूप से कहा कि विषमलैंगिक संबंधों में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के साथ-साथ इंटरसेक्स व्यक्ति जो पुरुष या महिला के रूप में पहचान करते हैं, उन्हें मौजूदा कानून के तहत शादी करने का अधिकार है । • 3:2 बहुमत से, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि गैर-विषमलैंगिक जोड़ों को सिविल यूनियन में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है जब तक कि विधायिका कानून में बदलाव न करे। इस 3:2 बहुमत ने आगे माना कि अविवाहित जोड़ों (समलैंगिक/गैर-विषमलैंगिक जोड़ों सहित) को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 ("**जेजे अधिनियम**") के तहत संयुक्त रूप से बच्चे को गोद लेने का अधिकार नहीं है। न्यायमूर्ति भट (न्यायमूर्ति कोहली द्वारा शामिल) और न्यायमूर्ति नरसिम्हा की राय ने इन मुद्दों पर न्यायालय की बहुमत की राय बनाई। अल्पमत ने पाया कि गैर-विषमलैंगिक जोड़ों को नागरिक संघ में प्रवेश करने का अधिकार है। अल्पमत ने पाया कि नागरिक संघों को मान्यता न देना संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लंघन होगा। अल्पमत ने जेजे अधिनियम की धारा 57 की व्याख्या अविवाहित जोड़ों को गोद लेने की अनुमति देने के लिए की और परिणामस्वरूप केंद्रीय दत्तक ग्रहण संसाधन प्राधिकरण ("**कारा**") दत्तक ग्रहण विनियमन के विनियमन 5(3) को रद्द कर दिया, जो केवल एकल व्यक्तियों और विवाहित जोड़ों को गोद लेने की अनुमति देता है जो एक स्थिर वैवाहिक संबंध में हैं। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति कौल की राय ने न्यायालय की अल्पमत राय का गठन किया। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि LGBTQIA+ समुदाय के सदस्यों को कई तरह की कानूनी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है और केंद्र सरकार को निर्देश दिया कि वह केंद्रीय कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में एक समिति गठित करे, जो नागरिक विवाह में समलैंगिक जोड़ों के अधिकारों और लाभों को निर्धारित करेगी। **निर्णय के कारण:** विवाह करना कोई मौलिक अधिकार नहीं है • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि संविधान स्पष्ट रूप से विवाह करने के मौलिक अधिकार को मान्यता नहीं देता है । इसने बताया कि विवाह संस्था से संबंधित कानून संसद द्वारा बनाए जाते हैं। हालांकि, न्यायालय ने पाया कि विवाह संस्था को लोगों द्वारा दिए जाने वाले महत्व या विवाह कानूनों की विषय-वस्तु के आधार पर मौलिक अधिकार के दायरे में नहीं रखा जा सकता है। चूंकि विवाह करने का अधिकार एक व्यक्तिगत पसंद है जो सामाजिक स्थिति प्रदान करता है, यह एक लागू करने योग्य अधिकार नहीं है जिसे अदालतें सरकार को प्रदान करने के लिए बाध्य कर सकती हैं। एसएमए को समलैंगिक विवाहों को कवर करने के लिए नहीं समझा जा सकता • सभी पांच न्यायाधीशों ने माना कि एसएमए में लिंग-विशिष्ट शब्दों (जैसे, "पुरुष" और "महिला" या "दुल्हन" और "दूल्हा") को लिंग तटस्थ रूप से (जिसका अर्थ है "पति या पत्नी") पढ़ने से समलैंगिक विवाह की अनुमति देने के लिए कानून को फिर से लिखना होगा, जो संसद की भूमिका थी न कि न्यायालय की। न्यायालय ने नोट किया कि एसएमए के विभिन्न प्रावधान विशेष रूप से 'पुरुषों' और 'महिलाओं' को संदर्भित करते हैं और उनके साथ अलग-अलग व्यवहार करते हैं (जैसे, विवाह के लिए अलग-अलग कानूनी आयु और तलाक, रखरखाव और विरासत के मुद्दों पर अलग-अलग अधिकार निर्दिष्ट करना)। इस प्रकार, समलैंगिक जोड़ों पर एसएमए लागू करने से कानून के लिंग-विशिष्ट प्रावधानों को लागू करते समय कई जटिलताएँ पैदा होंगी। • किसी भी न्यायाधीश ने एसएमए को असंवैधानिक करार नहीं दिया। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने एसएमए को रद्द करने से इनकार कर दिया क्योंकि इससे अंतरधार्मिक जोड़ों के लिए भारतीय कानून के तहत शादी करना असंभव हो जाएगा और एसएमए के प्रगतिशील इरादे को हराया जा सकेगा। न्यायमूर्ति कौल ने पाया कि समलैंगिक विवाह के लिए प्रावधान करने में एसएमए की विफलता भेदभावपूर्ण थी, लेकिन उन्होंने मुख्य न्यायाधीश के समान कारणों से इसे रद्द नहीं किया। न्यायमूर्ति

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		भट ने कहा कि एसएमए केवल इसलिए भेदभावपूर्ण नहीं था क्योंकि यह गैर-विषमलैंगिक विवाहों के लिए प्रावधान करने में विफल रहा, उन्होंने कहा कि 1954 में जब एसएमए लागू किया गया था, तब समलैंगिकता को ही अपराध घोषित कर दिया गया था। LGBTQIA+ जोड़ों के नागरिक संघों को कोई कानूनी मान्यता नहीं • सभी पांच न्यायाधीशों ने माना कि समलैंगिक व्यक्तियों को अनुच्छेद 21 के तहत संबंध बनाने और साथी चुनने का अधिकार है। हालांकि, तीन न्यायाधीशों (न्यायाधीश भट, कोहली और नरसिम्हा) के बहुमत ने गैर-विषमलैंगिक जोड़ों के लिए कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त नागरिक संघ बनाने के अधिकार को मान्यता नहीं दी। उन्होंने कहा कि नागरिक संघों को मान्यता देने के लिए ऐसे संघों के लिए एक अलग कानूनी ढांचा बनाना होगा, जिसमें पंजीकरण, पात्रता, आयु प्रतिबंध और विवाह से संबंधित अन्य अधिकार शामिल हैं, जो न्यायालय की शक्ति से परे है। न्यायमूर्ति नरसिम्हा ने न्यायमूर्ति भट से सहमति जताते हुए कहा कि राज्य को नागरिक संघों को मान्यता देने के लिए बाध्य करना शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन कर सकता है। हालांकि, मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति कौल (अल्पमत में) ने फैसला सुनाया कि समलैंगिक जोड़ों को नागरिक संघ में प्रवेश करने का अधिकार है और राज्य का ऐसे संघों को मान्यता देने का कर्तव्य है। यह अधिकार अनुच्छेद 19 और 25 के अंतर्गत आता है, जिसमें भाषण, अभिव्यक्ति, संघ और विवेक की स्वतंत्रता शामिल है । अल्पमत ने पाया कि अंतरंग संबंधों के पूर्ण आनंद के लिए नागरिक संघ बनाने का अधिकार आवश्यक है। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ की राय ने कुछ लाभों को रेखांकित किया जो नागरिक संघों को प्राप्त होंगे, जैसे कि उनके विवाह में हस्तक्षेप से पुलिस सुरक्षा, और जैसा कि नीचे चर्चा की गई है, गोद लेने का अधिकार। अविवाहित या गैर-विषमलैंगिक दम्पतियों को गोद लेने का अधिकार नहीं • तीन न्यायाधीशों (न्यायाधीश भट, कोहली और नरसिम्हा) के बहुमत ने माना कि जेजे अधिनियम की धारा 57(2) अविवाहित जोड़ों द्वारा गोद लेने की अनुमति नहीं देती है। न्यायमूर्ति भट ने कहा कि धारा 57 बच्चे के सर्वोत्तम हितों की रक्षा करने का प्रयास करती है, और अविवाहित जोड़ों पर कानून लागू करने से गोद लिए गए बच्चे की सुरक्षा नहीं हो पाएगी यदि विवाह बाद में टूट जाता है। इस प्रकार, बहुमत ने माना कि अविवाहित जोड़े (गैर-विषमलैंगिक जोड़ों सहित) गोद नहीं ले सकते। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ (अल्पमत में) ने देखा कि धारा 57 में "युगल" ('विवाहित युगल' नहीं) और "जीवनसाथी" शब्द का इस्तेमाल किया गया है और माना कि जेजे अधिनियम अविवाहित युगलों (समलैंगिक युगलों सहित) को बच्चा गोद लेने से नहीं रोकता है। मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने आगे कहा कि सीएआरए दत्तक ग्रहण विनियम का विनियमन 5(3), जो दत्तक ग्रहण को एकल व्यक्तियों और विवाहित युगलों तक सीमित करता है जो दो वर्षों से स्थिर वैवाहिक संबंध में हैं, जेजे अधिनियम के साथ असंगत है क्योंकि यह विवाहित युगलों तक दत्तक ग्रहण को प्रतिबंधित करता है, जबकि जेजे अधिनियम ऐसा नहीं करता है। सीएआरए दत्तक ग्रहण विनियम का विनियमन 5(3) जेजे अधिनियम के अधिकार क्षेत्र से बाहर है और इसे "वैवाहिक" शब्द को बाहर करने के लिए पढ़ा जाता है विषमलैंगिक संबंधों में ट्रांसजेंडर व्यक्ति विवाह कर सकते हैं • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि विषमलैंगिक संबंध में एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति विवाह करने का हकदार है । न्यायालय ने तर्क दिया कि भारत में विवाह कानून विषमलैंगिक संबंधों से उत्पन्न विवाहों की अनुमति देते हैं। मौजूदा कानून जैसे कि एसएमए, 1954 या अन्य व्यक्तिगत कानून एक 'पुरुष' और एक 'महिला', 'पति' और एक 'पत्नी', 'दुल्हन और दूल्हे' के बीच वैवाहिक संबंध का वर्णन करते हैं। यदि इसकी व्याख्या ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को बाहर करने के लिए की गई, तो यह संविधान के अनुच्छेद 15 और ट्रांसजेंडर व्यक्ति अधिनियम, 2019 का उल्लंघन होगा जो ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के खिलाफ भेदभाव को रोकता है । इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि एक व्यक्ति अपनी लैंगिक पहचान के आधार पर एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति है न कि अपने यौन अभिविन्यास के आधार पर। निर्णय देखें
8	धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 19 के अंतर्गत कानूनी गिरफ्तारी की आवश्यकताएं।	**पंकज बंसल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** **2023 आईएनसी 866** **(3 अक्टूबर 2023)** सीआरएलए संख्या 3051-3052/2023 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति अज्जिकुट्टीरा एस बोपन्ना, न्यायमूर्ति संजय कुमार **प्रश्न: क्या अपीलकर्ताओं की गिरफ्तारी वैध थी और धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (" पीएमएलए ") की धारा 19 की आवश्यकताओं के अनुरूप थी।** **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 12 मई 2023 को प्रवर्तन निदेशालय ("**ईडी**") ने अपीलकर्ता की कंपनी, एम3एम ग्रुप को समन जारी किया, जिसमें उनसे कुछ लेनदेन से संबंधित जानकारी और दस्तावेज उपलब्ध कराने को कहा गया। 1 जून 2023 को ईडी ने एम3एम ग्रुप की संपत्ति पर छापा मारा और उनकी संपत्ति और बैंक खाते जब्त कर लिए और श्री रूप बंसल को गिरफ्तार कर लिया, जो एम3एम में प्रमोटर थे। • अपीलकर्ताओं (पंकज बंसल और उनके पिता श्री बसंत बंसल) ने ईडी द्वारा गिरफ्तारी की आशंका जताते हुए अग्रिम जमानत के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। 9 जून 2023 को, दिल्ली उच्च न्यायालय ने उन्हें 5 जुलाई 2023 को अगली सुनवाई तक अग्रिम जमानत दे दी क्योंकि ईडी ने उन्हें अपनी जांच में शामिल नहीं किया था। उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि अपीलकर्ताओं को मामले में ईडी द्वारा समन भी नहीं किया गया था। • इसके बाद ईडी ने 13 जून 2023 को श्री सुधीर परमार और श्री रूप बंसल के खिलाफ एक और सूचना रिपोर्ट दायर की। उसी दिन अपीलकर्ताओं को समन भी जारी किया गया। श्री पंकज बंसल और श्री बसंत बंसल दोनों 14 जून 2023 को नई

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		दिल्ली में ईडी के कार्यालय में मौजूद थे। हालांकि, ईडी ने दावा किया कि उन्होंने दूसरी सूचना रिपोर्ट के संबंध में समन से परहेज किया था और इसलिए, उन दोनों को पीएमएलए की धारा 19(1) के तहत गिरफ्तार किया गया था। पंचकूला के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को पूछताछ के लिए पांच दिनों के लिए ईडी की हिरासत में भेज दिया। • अपीलकर्ताओं ने गिरफ्तारी और रिमांड को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया और अपीलकर्ताओं ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट की खंडपीठ (दो न्यायाधीश) ने केवल इस बात पर विचार किया कि क्या पीएमएलए की धारा 19 के तहत अपीलकर्ताओं की गिरफ्तारी वैध थी। न्यायालय ने ईडी द्वारा अपीलकर्ताओं को गिरफ्तार करने के तरीके की जांच की और माना कि पीएमएलए की धारा 19 के तहत सुरक्षा उपायों का उल्लंघन किया गया था। अपीलकर्ताओं को ईडी की हिरासत में भेजने के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के आदेश में यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया कि सत्र न्यायाधीश ने गिरफ्तारी के आधारों की जांच की थी या वे इस बात से संतुष्ट थे कि पीएमएलए की धारा 19 की आवश्यकताएं पूरी हो गई थीं। सुप्रीम कोर्ट ने पीएमएलए की धारा 19(1) के तहत फैसला सुनाया कि गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधारों की लिखित प्रति प्रदान की जानी चाहिए। • सुप्रीम कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए आदेश दिया कि अपीलकर्ताओं को तुरंत हिरासत से रिहा किया जाए और उनकी गिरफ़्तारी रद्द की जाए। न्यायालय का यह फ़ैसला न्यायमूर्ति संजय कुमार ने लिखा था। **निर्णय के कारण:** पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत सुरक्षा उपाय • पीएमएलए की धारा 19 में यह निर्धारित किया गया है कि मनी लॉन्ड्रिंग में कथित रूप से शामिल व्यक्ति की गिरफ्तारी कैसे की जा सकती है। विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ (2022 आईएनएससी 757) पर भरोसा करते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने देखा कि धारा 19 में कुछ अंतर्निहित सुरक्षा उपाय हैं जिनका पालन गिरफ्तारी को अधिकृत करने वाले उच्च पदस्थ अधिकारियों को करना होता है। इनमें अधिकारी के इस विश्वास के कारणों को दर्ज करना शामिल है कि व्यक्ति मनी लॉन्ड्रिंग के अपराध में शामिल था और आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के आधारों के बारे में सूचित करना। यह आवश्यकता भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) से निकलती है। • सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि पीएमएलए की धारा 19 के तहत प्राधिकृत अधिकारी को गिरफ्तारी आदेश की प्रति के साथ-साथ व्यक्ति को गिरफ्तार करने की आवश्यकता से संबंधित उसके पास मौजूद सभी सामग्री को न्यायाधिकरण को भेजना आवश्यक है। प्राधिकृत अधिकारी को आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के अनुपालन में 24 घंटे के भीतर गिरफ्तार व्यक्ति को विशेष न्यायालय या न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना भी आवश्यक है। अंत में, वी. सेंथिल बालाजी बनाम राज्य (2023 आईएनएससी 677) के मामले के बाद, पीएमएलए के तहत न्यायाधिकरण को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पीएमएलए की धारा 19 के तहत सुरक्षा उपायों का उचित अनुपालन किया गया है। अन्यथा, गिरफ्तारी और पूछताछ के लिए कोई भी रिमांड गैरकानूनी होगा और संविधान के अनुच्छेद 22(1) का उल्लंघन होगा। • वर्तमान मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश यह पता लगाने में विफल रहे कि क्या ईडी ने यह मानने के लिए कारण दर्ज किए थे कि अपीलकर्ता पीएमएलए के तहत अपराध के दोषी थे। इसके अलावा, सत्र न्यायाधीश इस बारे में अपनी संतुष्टि दर्ज करने में विफल रहे कि क्या ईडी द्वारा पीएमएलए की धारा 19 के तहत आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया था। गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित करना • यह देखते हुए कि पीएमएलए की धारा 19 में यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया गया था कि ईडी को गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधारों के बारे में कैसे 'सूचित' करना था, सर्वोच्च न्यायालय ने जांच की कि व्यक्तियों को कैसे 'सूचित' किया जाना चाहिए। न्यायालय ने माना कि पीएमएलए की धारा 19(1) में प्रयुक्त वैधानिक भाषा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के तहत संवैधानिक जनादेश (जिसके अनुसार गिरफ्तार व्यक्ति को जल्द से जल्द उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना आवश्यक है) के अनुसार गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधारों की लिखित प्रति प्रदान की जानी चाहिए। न्यायालय ने देखा कि गिरफ्तार व्यक्ति को यह जानकारी देना आवश्यक है ताकि वह कानूनी सलाह ले सके और न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए अपना मामला प्रस्तुत कर सके । हालांकि, न्यायालय ने यह भी माना कि गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधार प्रदान करते समय संवेदनशील जानकारी जो जांच को प्रभावित कर सकती है, उसे संपादित किया जा सकता है। • वर्तमान मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ताओं को गिरफ्तारी के आधार उचित तरीके से नहीं बताए गए थे और इस प्रकार, उनकी गिरफ्तारी पीएमएलए की धारा 19(1) का उल्लंघन थी। ईडी द्वारा जांच के संचालन पर सुप्रीम कोर्ट का विश्लेषण • सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि जिस तरह से ईडी ने मामले की जांच की वह पारदर्शी या निष्पक्ष नहीं थी और उसमें सद्भावना की कमी थी। कोर्ट ने नोट किया कि ईडी ने 13-14 जून 2023 को दूसरी सूचना रिपोर्ट दाखिल की थी, दिल्ली उच्च न्यायालय को लंबित सूचना रिपोर्ट का खुलासा करने से इनकार कर दिया और दिल्ली उच्च न्यायालय से अग्रिम जमानत मिलते ही अपीलकर्ताओं को तलब किया और गिरफ्तार कर लिया। • ईडी ने तर्क दिया था कि अपीलकर्ताओं की गिरफ़्तारी इसलिए हुई क्योंकि वे ईडी के साथ उनकी जाँच में सहयोग करने में विफल रहे और समन का जवाब देने में विफल रहे । सुप्रीम कोर्ट ने माना कि गवाह के सहयोग न करने मात्र से उसे पीएमएलए की धारा 19 के तहत गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• यह देखते हुए कि जांच के दौरान ईडी का गुप्त और दुर्भावनापूर्ण आचरण शक्ति के मनमाने प्रयोग को दर्शाता है, न्यायालय ने आदेश दिया कि अपीलकर्ताओं की न्यायिक हिरासत उचित नहीं है और उनकी गिरफ्तारी को रद्द कर दिया जाए तथा उन्हें रिहा किया जाए। निर्णय देखें
9	**क्या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा 6ए को अमान्य घोषित करने का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा।**	**सीबीआईवी डॉ. आरआर किशोर** **2023 आईएनएससी 817** **(11 सितंबर 2023)** सीआरएल.ए. संख्या 377/2007 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति अभय एस. ओका, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ, न्यायमूर्ति जितेंद्र के. माहेश्वरी **प्रश्न:** क्या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2014 में दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 ("**डीएसपीई अधिनियम**") की धारा 6-ए को अमान्य घोषित करने का निर्णय, जिसमें कहा गया था कि वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार की जांच केवल केंद्र सरकार की मंजूरी से ही शुरू हो सकती है, पूर्वव्यापी प्रभाव रखेगा या उस तारीख से लागू होगा जिस दिन सर्वोच्च न्यायालय ने प्रावधान को रद्द कर दिया था। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • डॉ. आरआर किशोर दिल्ली सरकार में मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी थे। 2004 में, उन्हें केंद्रीय जांच ब्यूरो ("**सीबीआई**") ने एक रेडियोलॉजिस्ट के लिए "चीजों को सही करने" के लिए कथित तौर पर रिश्वत लेते हुए गिरफ्तार किया था, जो एक अवैध लिंग निर्धारण परीक्षण कर रहा था। • डॉ. किशोर ने दिल्ली उच्च न्यायालय में गिरफ्तारी को चुनौती देते हुए दावा किया कि सीबीआई ने उन्हें गिरफ्तार करने के लिए दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 ("**डी.एस.पी.ई. अधिनियम**") की धारा 6ए (1) के तहत अनिवार्य अनुमोदन प्राप्त नहीं किया। डी.एस.पी.ई. अधिनियम की धारा 6ए के अनुसार केंद्र सरकार को संयुक्त सचिव स्तर या उससे उच्च पद के किसी राज्य अधिकारी के खिलाफ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (" **पी.सी. अधिनियम** ") के तहत जांच से पहले पूर्व अनुमोदन देना आवश्यक है। मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी संयुक्त सचिव स्तर का अधिकारी होता है। • अक्टूबर 2006 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने माना कि डॉ. किशोर की गिरफ़्तारी अवैध थी क्योंकि गिरफ़्तारी से पहले डीएसपीई अधिनियम की धारा 6ए(1) के तहत मंज़ूरी नहीं ली गई थी। जनवरी 2007 में सीबीआई ने उच्च न्यायालय के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की। • 6 मई 2014 को, डॉ. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम निदेशक, केंद्रीय जांच ब्यूरो (2014 आईएनएससी 358) ("**सुब्रमण्यम स्वामी**") में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने डीएसपीई अधिनियम की धारा 6 ए (1) को असंवैधानिक घोषित किया क्योंकि यह अनुच्छेद 14 के तहत समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है। न्यायालय ने माना कि प्रतिरक्षा केवल संयुक्त सचिव स्तर से ऊपर के अधिकारियों के एक निश्चित रैंक तक सीमित नहीं हो सकती। ○ सुब्रमण्यम स्वामी के फैसले के बाद , सीबीआई ने तर्क दिया कि चूंकि प्रावधान को असंवैधानिक घोषित किया गया है, इसका कभी कोई कानूनी प्रभाव नहीं रहा और डॉ आरआर किशोर यह दावा नहीं कर सकते कि सीबीआई ने अपनी जांच के दौरान प्रावधान का उल्लंघन किया। डॉ आरआर किशोर ने तर्क दिया कि भले ही सुप्रीम कोर्ट ने कानून को अवैध घोषित कर दिया हो, लेकिन कोर्ट ने यह नहीं कहा कि कानून का कभी कोई प्रभाव नहीं था (यानी, कोर्ट का अवैधीकरण पूर्वव्यापी नहीं था)। क्योंकि डॉ आरआर किशोर की जांच कोर्ट द्वारा धारा 6ए को अवैध ठहराने से पहले हुई थी, डॉ आरआर किशोर ने तर्क दिया कि जब उनकी जांच हुई थी, तब धारा 6ए का कानूनी प्रभाव था और सीबीआई की जांच ने धारा 6ए का उल्लंघन किया। डॉ आरआर किशोर के अनुसार, फैसले को पूर्वव्यापी प्रभाव देने से अनुच्छेद 20(1) में संवैधानिक संरक्षण का उल्लंघन होगा कि किसी व्यक्ति को ऐसे कानून के तहत दंडित नहीं किया जाएगा जो अपराध किए जाने के समय लागू नहीं था। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने माना कि सुब्रमण्यम स्वामी मामले में की गई घोषणा का प्रभाव पूर्वव्यापी होगा, और डीएसपीई अधिनियम की धारा 6ए का उसके लागू होने की तिथि यानी 11 सितंबर 2003 से कोई कानूनी प्रभाव नहीं होगा। कोर्ट ने फैसला सुनाया कि एक बार जब कोई कानून असंवैधानिक घोषित हो जाता है तो वह शुरू से ही शून्य हो जाता है (यानी, इसे उस दिन से कोई कानूनी प्रभाव नहीं माना जाता है जिस दिन इसे लागू किया गया था)। नतीजतन, धारा 6ए वरिष्ठ सिविल सेवकों को कोई सुरक्षा प्रदान नहीं करेगी, भले ही उनकी जांच 2014 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से पहले शुरू हुई हो। कोर्ट का फैसला जस्टिस विक्रम नाथ ने लिखा था। **निर्णय के कारण:** संविधान के अनुच्छेद 20 की प्रयोज्यता • सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 20(1) का हवाला दिया, जिसमें कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा, सिवाय उस अपराध के समय लागू कानून का उल्लंघन करने के। अनुच्छेद में यह भी प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को अपराध के समय लागू कानून के तहत दी गई सजा से अधिक सजा नहीं दी जा सकती । न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 20 के तहत जो निषिद्ध है, वह किसी नए अपराध के लिए दोषी ठहराना या किसी ऐसे कानून के तहत बढ़ी हुई सजा देना है, जो उस समय लागू नहीं था, जब अपराध किया गया था। हालाँकि, अपराध के बाद जाँच और परीक्षण प्रक्रिया में बदलाव निषिद्ध नहीं हैं । अपराध के समय की प्रक्रिया से अलग प्रक्रिया के तहत जाँच या परीक्षण संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन नहीं करता है ।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि डीएसपीई अधिनियम की धारा 6ए को अमान्य करने से कोई नया अपराध या दोषसिद्धि नहीं होती है। यह पीसी अधिनियम (धारा 23) के तहत जांच के संबंध में एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है। कोर्ट ने कहा कि प्रक्रियात्मक प्रावधानों में संशोधन को नया अपराध बनाने के लिए नहीं माना जा सकता (धारा 33(xi))। कोर्ट ने कहा कि वर्तमान संदर्भ में शामिल मुद्दा प्रक्रिया के मामले से संबंधित है, न कि दोषसिद्धि या बढ़ी हुई सजा के दो पहलुओं से जो संविधान के अनुच्छेद 20 के उप-अनुच्छेद (1) (धारा 31) के अंतर्गत आते हैं। सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में निर्णय का पूर्वव्यापी अनुप्रयोग • सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 13(2) के अनुसार, संविधान में निर्धारित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कानून अमान्य है। इसके बाद कोर्ट ने पाया कि सुब्रमण्यम स्वामी मामले में संविधान पीठ ने पाया था कि डीएसपीई अधिनियम की धारा 6ए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है जो समानता के अधिकार की गारंटी देता है। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 13(2) के अनुसार धारा 6ए अमान्य होगी। • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि कोई भी कानून जो किसी भी कारण से असंवैधानिक माना जाता है, चाहे वह विधायी क्षमता की कमी के कारण हो या मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो, वह आरंभ से ही शून्य माना जाएगा (यानी, इसे अधिनियमित होने के दिन से कोई कानूनी प्रभाव नहीं माना जाएगा)। न्यायालय ने यह भी कहा कि एक असंवैधानिक कानून एक वैध कानून नहीं है और कोई अधिकार प्रदान नहीं कर सकता है या कोई सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता है, यह निष्क्रिय है जैसे कि इसे कभी पारित ही नहीं किया गया था। इस प्रकार, सुब्रमण्यम स्वामी के मामले में संविधान पीठ द्वारा की गई घोषणा का पूर्वव्यापी प्रभाव होगा । निर्णय देखें
10	निवारक निरोध आदेशों की समीक्षा के लिए दिशानिर्देश।	**अमीना बेगम बनाम तेलंगाना राज्य** **2023 आईएनसी 788** **(4 सितंबर 2023)** सीआरएल.ए. संख्या 2706/2023 **न्यायाधीश:** जस्टिस सूर्यकांत, जस्टिस दीपांकर दत्ता **प्रश्न:** क्या अपीलकर्ता के पति के विरुद्ध पारित निवारक निरोध आदेश वैध है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • हैदराबाद में पुलिस आयुक्त ने तेलंगाना खतरनाक गतिविधि रोकथाम अधिनियम, 1986 (**"तेलंगाना अधिनियम")** की धारा 3(2) के प्रावधानों के तहत अपीलकर्ता के पति (**"बंदी") के खिलाफ़ नज़रबंदी आदेश जारी किया** । बंदी पर आरोप है कि उसने अपने साथियों के साथ संगठित तरीके से महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुँचाने, धोखाधड़ी, जबरन वसूली, सरकारी कर्मचारियों को उनके वैध कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकने, डकैती और आपराधिक धमकी जैसे गंभीर अपराध आदतन किए हैं। • अपीलकर्ता की पत्नी ने हिरासत आदेश को चुनौती दी। हालांकि, समीक्षा के बाद, तेलंगाना अधिनियम के तहत सलाहकार बोर्ड ने हिरासत को उचित माना। नतीजतन, राज्य सरकार ने हिरासत आदेश की पुष्टि की, हिरासत की तारीख (27 जनवरी 2023) से एक साल तक इसे जारी रखने का निर्देश दिया। इसके बाद, अपीलकर्ता की पत्नी ने तेलंगाना उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। इसके बाद, सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की गई । **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने हिरासत आदेश को रद्द कर दिया और हिरासत में लिए गए व्यक्ति को रिहा करने का निर्देश दिया। न्यायालय का यह फैसला न्यायमूर्ति दत्ता ने लिखा था। • सर्वोच्च न्यायालय ने निवारक निरोध आदेशों की समीक्षा करते समय न्यायालयों के लिए निम्नलिखित दिशानिर्देश भी निर्धारित किए हैं: 1. प्राधिकारी को सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए तथा बाहरी सामग्री पर निर्भर नहीं होना चाहिए। 2. निवारक निरोध की शक्ति का प्रयोग इच्छित उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए, न कि अनधिकृत कारणों से। 3. हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी को स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिए, न कि किसी बाहरी प्रभाव में। 4. प्राधिकारी को व्यक्तिगत मामलों पर विचार करने से स्वयं को वंचित नहीं रखना चाहिए। 5. संतुष्टि ऐसी सामग्री पर आधारित होनी चाहिए जो स्पष्ट रूप से वैधानिक आदेशों को पूरा करती हो। 6. पुराने आचरण और हिरासत की आवश्यकता के बीच स्पष्ट संबंध होना चाहिए, तथा पुरानी सामग्री पर निर्भर नहीं होना चाहिए। 7. नजरबंदी के लिए आधार प्रासंगिक होने चाहिए तथा उसे नजरबंद व्यक्ति के साथ साझा किया जाना चाहिए, जिससे प्रतिनिधित्व का अवसर मिल सके। 8. हिरासत प्रक्रिया को संबंधित कानून द्वारा निर्धारित समयसीमा का कड़ाई से पालन करना होगा। **निर्णय के कारण:** हिरासत आदेश अस्थिर और अक्षम्य है • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि हिरासत आदेश पाँच अलग-अलग अपराधों पर आधारित था, जिसमें महिलाओं की गरिमा को ठेस पहुँचाना, धोखाधड़ी, सरकारी अधिकारियों के काम में बाधा डालना और डकैती शामिल है। न्यायालय ने पाया कि हिरासत आदेश में अपराध निजी व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले अलग-अलग कृत्य थे और सार्वजनिक जीवन को बाधित नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त, इसने नोट किया कि केवल पिछले आपराधिक इतिहास के आधार पर हिरासत को उचित नहीं ठहराया

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		जा सकता है और हिरासत आदेशों में बाहरी कारकों को शामिल करने के खिलाफ चेतावनी दी। न्यायालय ने हिरासत आदेशों में स्पष्ट और समझने योग्य भाषा के महत्व पर भी प्रकाश डाला। न्यायालय ने माना कि आपातकालीन या तेजी से आगे बढ़ने वाली स्थितियों के लिए आरक्षित निवारक हिरासत कानूनों को इस मामले में सामान्य 'कानून और व्यवस्था' के मुद्दों के प्रवर्तन के लिए लागू नहीं किया जाना चाहिए था। 'कानून और व्यवस्था' तथा 'सार्वजनिक व्यवस्था' के बीच अंतर • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि तेलंगाना अधिनियम की धारा 3 के अनुसार हिरासत आदेश जारी करने से पहले हिरासत में रखने वाले अधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि की आवश्यकता होती है। न्यायालय ने दो मुख्य मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया: क्या कथित कृत्यों ने 'सार्वजनिक व्यवस्था' को नुकसान पहुंचाया और क्या सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार किया गया। अधिनियम की धारा 2(ए) का हवाला देते हुए, न्यायालय ने 'सार्वजनिक व्यवस्था' को ऐसी स्थितियों के रूप में समझाया जो जनता के बीच नुकसान, खतरा, चिंता या असुरक्षा पैदा करती हैं या जीवन या सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा करती हैं। 'कानून और व्यवस्था' के तहत वर्गीकृत घटनाएँ व्यापक सामाजिक व्यवधान पैदा किए बिना व्यक्तिगत अधिकारों या छोटे समूहों को प्रभावित करने वाले विशिष्ट कानूनों के उल्लंघन से संबंधित हैं। इसने 'कानून और व्यवस्था' और 'सार्वजनिक व्यवस्था' के बीच अंतर किया, और माना कि कानून का हर उल्लंघन सार्वजनिक अव्यवस्था की ओर नहीं ले जाता। निवारक निरोध और सीमित न्यायिक समीक्षा का उद्देश्य • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि निवारक निरोध में बिना किसी सुनवाई के स्वतंत्रता का हनन शामिल है और इसका उद्देश्य राज्य की सुरक्षा और कल्याण की रक्षा करना है । यह सबूत के बजाय संदेह या प्रत्याशा के आधार पर समाज को संभावित नुकसान को रोकने के लिए एक एहतियाती उपाय है। पीड़ित बंदियों के लिए सीमित न्यायिक समीक्षा उपलब्ध है। निर्णय देखें
11	**शून्य या शून्यकरणीय विवाह से उत्पन्न बच्चे का सहदायिक (संयुक्त परिवार) संपत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार।**	**रेवनासिद्दप्पा वी. मल्लिकार्जुन** **2023 आईएनएससी 783** **(1 सितंबर 2023)** सी.ए. क्रमांक 2844/2011 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति जमशेद बी. पारदीवाला, न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा **प्रश्न:** क्या शून्य विवाह या शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुआ बच्चा माता-पिता की सहदायिक संपत्ति (अर्थात पैतृक या संयुक्त परिवार की संपत्ति) का हकदार है या केवल माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्ति का । **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 2003 में, जिनिया केओटिन बनाम कुमार सीताराम मांझी (2002 आईएनएससी 576) ("**जिनिया केओटिन**") में सुप्रीम कोर्ट की एक डिवीजन बेंच (दो जजों) ने माना कि एक शून्य विवाह (ऐसा विवाह जिसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं होता है) या एक शून्यकरणीय विवाह (ऐसा विवाह जो एक पति या पत्नी द्वारा रद्द किया जा सकता है) से पैदा हुए बच्चे को पैतृक या सहदायिक संपत्ति (संयुक्त परिवार की संपत्ति) में उत्तराधिकार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं होगा। बाद में इस फैसले का पालन नीलाम्मा बनाम सरोजम्मा [(2006) 9 एससीसी 612] ("**नीलाम्मा**") और भारत माथा बनाम आर विजया रेंगनाथन (2010 आईएनएससी 328) ("**भारत माथा**") में किया गया । • सर्वोच्च न्यायालय में वर्तमान अपील (रेवनसिद्दप्पा बनाम मल्लिकार्जुन) श्री शिवशरणप्पा के नाजायज बेटों द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध दायर की गई थी। बेटों ने पैतृक संपत्ति में हिस्सा मांगा था। शिवशरणप्पा की पत्नी ने अपने दो बेटों के साथ कहा कि शिवशरणप्पा ने उनसे विवाहित रहते हुए दूसरी महिला से विवाह किया था और इसलिए, इस दूसरी शादी से पैदा हुए बच्चे शिवशरणप्पा की पैतृक संपत्ति में किसी भी हिस्से के हकदार नहीं हैं। • सर्वोच्च न्यायालय में, रेवनसिद्दप्पा बनाम मल्लिकार्जुन (2011 आईएनएससी 251) में एक खंडपीठ (दो न्यायाधीशों) ने जिनिया केओटिन , नीलाम्मा और भारत माथा के निर्णयों की सत्यता पर संदेह जताया और मामले को तीन न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ को भेज दिया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अमान्य या अमान्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चे अपने माता-पिता की पैतृक संपत्ति में हिस्सा पाने के हकदार हैं। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि ऐसे बच्चे पैतृक संपत्ति में सहदायिक नहीं हैं (ऐसा व्यक्ति जो अविभाजित संपत्ति में दूसरों के साथ समान रूप से हिस्सा लेता है) और वे अपने अधिकार में पैतृक संपत्ति में समान हिस्सेदारी का दावा नहीं कर सकते। हालाँकि, अमान्य और अमान्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चे पैतृक संपत्ति में अपने माता-पिता के हिस्से में अधिकार पाने के हकदार हैं। न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** अमान्य या अमान्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चों की वैधता • सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 ("**एचएमए**") की धारा 16 में प्रावधान है कि शून्य और शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चे भले ही "अवैध" हों, उन्हें वैध माना जाएगा । कोर्ट ने कहा कि कानून का सामाजिक रूप से लाभकारी उद्देश्य है कि इस तरह के विवाह से पैदा हुए बच्चों पर लगने वाले नाजायज होने के कलंक को दूर किया जाए, क्योंकि बच्चे खुद मासूम होते हैं।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		माता-पिता की संपत्ति में अधिकार • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक नाजायज व्यक्ति जिसे हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 16(3) के तहत वैध माना जाता है, उसे केवल अपने माता-पिता की संपत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार होगा और अपने माता-पिता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं होगा। • न्यायालय ने कहा कि वैध विवाह से पैदा हुए बच्चे हिंदू संयुक्त परिवार की संपत्ति में सहदायिक होते हैं और पैतृक संपत्ति में उनके माता-पिता के अलावा और बराबर का हिस्सा होता है। अपने माता-पिता की मृत्यु होने पर, वे अपने माता-पिता की संपत्ति में समान रूप से हिस्से के हकदार होते हैं। दूसरी ओर, शून्य और शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चे हिंदू संयुक्त परिवार की संपत्ति में सहदायिक नहीं होते हैं, वे केवल अपने माता-पिता की संपत्ति में हिस्से के हकदार होते हैं। • न्यायालय ने कहा कि माता-पिता की संपत्ति का पता लगाने के लिए, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6(3) में प्रावधान है कि हिंदू मिताक्षरा सहदायिक के लिए, संपत्ति में उनका हिस्सा वह हिस्सा होगा जो उसे आवंटित किया गया होता यदि उसकी मृत्यु से ठीक पहले विभाजन हुआ होता। इस प्रकार, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि शून्य और शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुए बच्चे निम्नलिखित के हकदार हैं: (i) पैतृक संपत्ति में हिस्सा जो विभाजन पर उनके माता-पिता को आवंटित किया जाएगा, और (ii) माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्ति में हिस्सा। निर्णय देखें
12	**तमिलनाडु के कैबिनेट मंत्री द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की गई।**	**वी. सेंथिल बालाजी वी. उप निदेशक द्वारा प्रतिनिधित्व राज्य** **2023 आईएनएससी 677** **(7 अगस्त 2023)** सीआरएल.ए. संख्या 2284-2285/2023 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति अज्जिकुट्टीरा एस. बोपन्ना, न्यायमूर्ति एम.एम. सुंदरेश **प्रश्न:** **(i)** **क्या धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (" पीएमएलए** ") की धारा 19 के तहत अपीलकर्ता को गिरफ्तारी से रिहा करने के लिए दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका विचारणीय है? **(ii)** क्या अपीलकर्ता द्वारा अस्पताल में बिताए गए समय को हिरासत अवधि से बाहर रखा जा सकता है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 14 जून 2023 को, तमिलनाडु राज्य के कैबिनेट मंत्री अपीलकर्ता को पीएमएलए की धारा 19 के तहत प्रवर्तन निदेशालय ("**ईडी**") द्वारा गिरफ्तार किया गया था। धारा 19 ईडी के अधिकृत अधिकारियों को उन व्यक्तियों को गिरफ्तार करने का अधिकार देती है, जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध किया है। उसी दिन, अपीलकर्ता को सीने में दर्द की शिकायत होने पर अस्पताल ले जाया गया। उनकी पत्नी ने उनकी रिहाई सुनिश्चित करने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की। इस बीच, राज्य ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष अपीलकर्ता की पंद्रह दिनों की न्यायिक हिरासत की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया। • 14 जून 2023 को ट्रायल कोर्ट ने पाया कि अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है। इसने अपीलकर्ता को 28 जून 2023 तक पंद्रह दिनों की न्यायिक हिरासत में भेज दिया। 15 जून 2023 को, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि अपीलकर्ता को बाईपास सर्जरी कराने के लिए उसकी पसंद के किसी निजी अस्पताल में ले जाया जाए। सर्जरी के बाद, 16 जून 2023 को ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता को आठ दिनों के लिए राज्य को हिरासत में दे दिया, इस शर्त पर पूछताछ की अनुमति दी कि उसे उसी अस्पताल में रहने दिया जाए जहाँ उसका इलाज चल रहा था। • राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें हिरासत की अवधि की गणना करते समय अस्पताल में भर्ती रहने की अवधि को बाहर रखने की मांग की गई थी क्योंकि अपीलकर्ता की कोई शारीरिक हिरासत नहीं ली गई थी। • उच्च न्यायालय की खंडपीठ (दो न्यायाधीशों) के विभाजित फैसले के कारण मामले को उच्च न्यायालय के तीसरे न्यायाधीश के पास भेज दिया गया। अपीलकर्ता की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को खारिज करते हुए तीसरे न्यायाधीश ने खंडपीठ से हिरासत की अवधि की गणना की तारीख तय करने को कहा। अपीलकर्ता और राज्य दोनों ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। राज्य ने अपीलकर्ता द्वारा अस्पताल में बिताए गए समय को कुल हिरासत अवधि से बाहर करने की मांग की। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ("**सीआरपीसी**") की धारा 167(2) के तहत एक मजिस्ट्रेट जांच के लिए अभियुक्त को अधिकतम पंद्रह दिनों की अवधि के लिए हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है और ऐसी हिरासत केवल पुलिस अधिकारियों द्वारा ही हो सकती है, ईडी जैसी अन्य जांच एजेंसियों के सदस्यों द्वारा नहीं। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने अपीलकर्ता की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका खारिज कर दी। इसने हिरासत का अर्थ वास्तविक शारीरिक हिरासत माना और अपीलकर्ता द्वारा अस्पताल में बिताए गए समय को हिरासत अवधि से बाहर रखा। इसने अपीलकर्ता की राज्य हिरासत 12 अगस्त 2023 तक मंजूर की। न्यायालय ने कहा कि धारा 167(2) सीआरपीसी में पुलिस के पक्ष में हिरासत की पंद्रह दिन की अवधि केवल रिमांड के पहले पंद्रह दिनों के भीतर हो सकती है या पूरी जांच अवधि को कवर कर सकती है, इस बड़े मुद्दे को विचार के लिए एक बड़ी बेंच के समक्ष रखा जाना चाहिए। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुंदरेश द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** बंदी प्रत्यक्षीकरण अवैध हिरासत के लिए एक उपाय है • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका केवल तभी जारी की जा सकती है जब हिरासत अवैध हो। इस प्रकार, यह याचिका केवल धारा 19 पीएमएलए गिरफ्तारी के संबंध में ही होगी, यदि व्यक्ति को धारा 19(3) के अनुसार

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		गिरफ्तारी के चौबीस घंटे के भीतर अदालत में पेश नहीं किया जाता है। न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता की गिरफ्तारी प्रक्रियागत रूप से अनुपालन योग्य थी, और ट्रायल कोर्ट ने गिरफ्तारी के दिन ही 14 जून 2023 को सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत रिमांड का एक तर्कसंगत आदेश पारित किया था । इस संदर्भ में, अपीलकर्ता के पास उपलब्ध एकमात्र उपाय बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करके उच्च न्यायालय के संवैधानिक रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के बजाय, उच्च मंच के समक्ष रिमांड के आदेश को चुनौती देना था। पीएमएलए एक विशेष कोड है • अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि राज्य ने सीआरपीसी की धारा 41ए के तहत अपने कर्तव्य का उल्लंघन किया है। धारा 41ए में गिरफ्तारी से पहले किसी व्यक्ति को नोटिस जारी करने का प्रावधान है। सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि पीएमएलए एक तरह का कोड है, जिसमें तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी से संबंधित अपने स्वयं के तंत्र और अपने स्वयं के सुरक्षा उपाय हैं। पीएमएलए की धारा 65 के प्रकाश में, जो यह प्रावधान करती है कि इसके प्रावधान सीआरपीसी के प्रावधानों को दरकिनार कर देंगे, ईडी के अधिकारियों को सीआरपीसी की धारा 41ए का पालन करने की आवश्यकता नहीं थी। हिरासत का मतलब है वास्तविक हिरासत • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि हिरासत का मतलब कानूनी हिरासत नहीं बल्कि वास्तविक या शारीरिक हिरासत है । इसने देखा कि एक बार हिरासत देने का आदेश पारित हो जाने के बाद, इस हिरासत को सुरक्षित करने में न्यायालय के आदेश सहित कोई भी बाहरी हस्तक्षेप, हिरासत की अवधि शुरू नहीं करेगा । नतीजतन, अपीलकर्ता के अस्पताल में भर्ती होने से हिरासत के पंद्रह दिन कम नहीं हो सकते थे, जो न्यायालय के आदेश के माध्यम से किया गया था । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, न्यायालय ने एक्टस क्यूरी नेमिनम ग्रेवबिट के सिद्धांत पर भरोसा किया , जो कहता है कि किसी भी व्यक्ति (इस मामले में ईडी) को न्यायालय के कार्य से पक्षपातपूर्ण नहीं माना जा सकता है। हिरासत केवल पुलिस हिरासत तक सीमित नहीं • सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि सीआरपीसी की धारा 167(2) में "ऐसी हिरासत" शब्द में न केवल पुलिस हिरासत बल्कि ईडी जैसी अन्य जांच एजेंसियों की हिरासत भी शामिल है। इसने नोट किया कि धारा 167(2) जानबूझकर "पुलिस हिरासत" शब्द को छोड़ देती है और मजिस्ट्रेट को यह निर्धारित करने का विवेक देती है कि किस तरह की हिरासत दी जानी है, चाहे वह न्यायिक हो, पुलिस हो या जांच एजेंसी या अन्य इकाई की हो। पंद्रह दिन की हिरासत अवधि रिमांड आदेश के अंतर्गत पंद्रह दिन तक सीमित नहीं है • अपीलकर्ता ने सीबीआई बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी (1992 आईएनएससी 154) (**"अनुपम जे. कुलकर्णी"**) का हवाला देते हुए तर्क दिया था कि सीआरपीसी की धारा 167(2) में निर्दिष्ट पंद्रह दिनों की हिरासत की अधिकतम अवधि का मतलब रिमांड के आदेश से पहले पंद्रह दिन हैं। सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि पंद्रह दिनों की अधिकतम अवधि जांच की पूरी अवधि में लागू होती है क्योंकि धारा 167(2) में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है कि यह पहले पंद्रह दिन ही होने चाहिए। लेकिन अपने समापन पैराग्राफ में, कोर्ट ने निर्देश दिया कि अनुपम जे. कुलकर्णी में विचार किए गए मुद्दे, कि क्या अधिकतम अवधि केवल पहले पंद्रह दिन होनी चाहिए, का फैसला सुप्रीम कोर्ट की एक बड़ी बेंच द्वारा किया जाए। निर्णय देखें
१३	**प्रवर्तन निदेशालय और केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के निदेशकों को दिए गए कार्यकाल विस्तार को चुनौती।**	**डॉ. जया ठाकुर बनाम भारत संघ** **2023 आईएनएससी 616** **(11 जुलाई 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 456/2022 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति भूषण आर गवई, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ, और न्यायमूर्ति संजय करोल **प्रश्न:** **(i)** क्या दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 और केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 में संशोधन करके केंद्रीय जांच ब्यूरो और प्रवर्तन निदेशालय के निदेशकों को तीन एक-वर्षीय विस्तार की अनुमति देने से इन जांच एजेंसियों की स्वतंत्रता को खतरा है, और क्या वे सुप्रीम कोर्ट के एक विशिष्ट आदेश का उल्लंघन करते हुए श्री संजय कुमार मिश्रा के कार्यकाल को बढ़ाने की अनुमति दे सकते हैं? **(ii)** **क्या संशोधन** कॉमन कॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2021 आईएनएससी 459) (**"कॉमन कॉज")** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के विपरीत हैं? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 13 नवंबर 2020 को ईडी के निदेशक श्री संजय कुमार मिश्रा का कार्यकाल दो साल से आगे बढ़ा दिया गया था। हालांकि, सितंबर 2021 में, कॉमन कॉज के फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इस तरह के विस्तार केवल दुर्लभ और असाधारण मामलों में और थोड़े समय के लिए ही दिए जाने चाहिए। कोर्ट ने विशेष रूप से श्री मिश्रा के कार्यकाल को पहले विस्तार से आगे बढ़ाने के खिलाफ फैसला सुनाया। • 14 दिसंबर 2021 को, संसद ने दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (संशोधन) अधिनियम, 2021 और केंद्रीय सतर्कता आयोग (संशोधन) अधिनियम, 2021 को अधिनियमित किया, जिसके तहत क्रमशः दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 ("**डी.एस.पी.ई. अधिनियम**") और केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 ("**सतर्कता अधिनियम**") में संशोधन किया गया। इन संशोधनों ने केंद्र सरकार को केंद्रीय जांच ब्यूरो ("**सी.बी.आई.**") और प्रवर्तन निदेशालय ("**ई.डी.**") के निदेशकों के कार्यकाल को तीन एक-वर्षीय एक्सटेंशन तक बढ़ाने की अनुमति दी। संशोधन से पहले, निदेशकों का कार्यकाल दो साल तक हो सकता था।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• कार्यकाल विस्तार की अनुमति देने वाले ये प्रावधान शुरू में 15 नवंबर 2021 को अध्यादेश के माध्यम से पेश किए गए थे। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के बावजूद, श्री संजय कुमार मिश्रा के कार्यकाल में 17 नवंबर 2021 को एक वर्ष के लिए दूसरी बार विस्तार हुआ, इसके बाद 17 नवंबर 2022 को तीसरा विस्तार हुआ। • इन संशोधनों और कार्यकाल विस्तार आदेशों को इस आधार पर चुनौती दी गई कि वे निष्पक्ष जांच और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं, और केंद्र सरकार को निदेशक के कार्यकाल पर पर्याप्त नियंत्रण प्रदान करते हैं, जिससे सीबीआई और ईडी की स्वतंत्रता से समझौता होता है और सुप्रीम कोर्ट के पिछले निर्देशों का उल्लंघन होता है। भारत संघ ने तर्क दिया कि ये एजेंसियाँ स्वतंत्र बनी हुई हैं क्योंकि केंद्रीय सतर्कता आयुक्त और सतर्कता आयुक्तों से मिलकर बनी एक उच्च स्तरीय समिति की सिफारिश पर विस्तार दिया जाता है, जो पूरी तरह से स्वतंत्र और निष्पक्ष व्यक्ति हैं। श्री मिश्रा के नेतृत्व की निरंतरता को महत्वपूर्ण माना गया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** ○ सर्वोच्च न्यायालय ने डीपीएसई और सतर्कता अधिनियम में संशोधन की संवैधानिकता की पुष्टि की। हालांकि, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि 17 नवंबर 2021 और 17 नवंबर 2022 को श्री मिश्रा के कार्यकाल का दूसरा और तीसरा विस्तार अवैध था और सर्वोच्च न्यायालय के कॉमन कॉज निर्णय का उल्लंघन था। न्यायालय ने केंद्र सरकार को 31 जुलाई 2023 तक प्रवर्तन निदेशालय के लिए एक नया निदेशक नियुक्त करने का निर्देश दिया , जबकि श्री मिश्रा तब तक इस पद पर बने रहेंगे। तीन न्यायाधीशों की पीठ का फैसला न्यायमूर्ति बीआर गवई ने लिखा था। **निर्णय के कारण:** ये संशोधन संवैधानिक हैं • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कानून को केवल दो आधारों पर रद्द किया जा सकता है: पहला, विधानमंडल के पास कानून बनाने की क्षमता नहीं है और दूसरा, कानून मौलिक अधिकारों या अन्य संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है (धारा 70-71) । • सर्वोच्च न्यायालय ने निदेशकों की नियुक्ति की प्रक्रिया की जांच की। ईडी के निदेशक की सिफारिश केंद्रीय सतर्कता आयुक्त की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा की जाती है, जिसमें गृह मंत्रालय, कार्मिक और राजस्व मंत्रालयों के सचिव शामिल होते हैं। केंद्रीय सतर्कता आयुक्त, जो इस समिति का नेतृत्व करते हैं, को तीन सदस्यीय निकाय द्वारा नियुक्त किया जाता है, जिसमें प्रधान मंत्री, गृह मंत्री और संसद में विपक्ष के नेता शामिल होते हैं । इसी तरह, सीबीआई के निदेशक की सिफारिश प्रधानमंत्री, संसद में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश (या सीजेआई द्वारा नामित सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश) से मिलकर बनी समिति द्वारा की जाती है। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि दोनों मामलों में, कानून में सुरक्षा उपायों ने इन अधिकारियों को बाहरी दबावों से बचाया, जिससे उन्हें स्वतंत्र रूप से कार्य करने की अनुमति मिली। नए संशोधन के तहत, समितियों को सार्वजनिक हित में मौजूदा निदेशकों के लिए विस्तार की सिफारिश करने का अधिकार है, बशर्ते वे विस्तार के लिए लिखित कारण बताएं । न्यायालय ने जोर देकर कहा कि यदि समिति पर प्रारंभिक नियुक्ति के लिए भरोसा किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि उसी समिति पर विस्तार के लिए भरोसा न किया जा सके । ये विस्तार सरकार की 'मज़बूती' पर मनमाने ढंग से नहीं दिए जा रहे हैं । श्री मिश्रा का दूसरा और तीसरा कार्यकाल विस्तार अवैध • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय द्वारा जारी निर्देश को बाद में किसी अधिनियम द्वारा निरस्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करना न्यायिक शक्ति में हस्तक्षेप करने के समान है और कानून के शासन का उल्लंघन करता है (धारा 114)। कॉमन कॉज के निर्णय में , श्री मिश्रा को दिए गए पहले कार्यकाल विस्तार को बरकरार रखने के बाद, न्यायालय ने विशेष रूप से निर्देश जारी किया कि श्री मिश्रा को कोई और विस्तार नहीं दिया जाएगा (धारा 111)। भारत संघ और श्री मिश्रा दोनों कार्यवाही में पक्ष थे और न्यायालय के निर्देश से बंधे थे (धारा 103)। इसलिए श्री मिश्रा को दिए गए बाद के विस्तार अवैध थे (धारा 121(ii))। निर्णय देखें
14	**तमिलनाडु द्वारा पशु क्रूरता निवारण अधिनियम में संशोधन करने तथा 'जल्लीकट्टू' की अनुमति देने को चुनौती।**	**भारतीय पशु कल्याण बोर्ड बनाम भारत संघ** **2023 आईएनएससी 548** **(18 मई 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 23/2016 **न्यायाधीश:** जस्टिस कुरियन. एम. जोसेफ, न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी, न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय, न्यायमूर्ति चुडालायिल टी. रविकुमार, **प्रश्न:** **(i)** क्या तमिलनाडु राज्य में जल्लीकट्टू को अनुमति देने वाले पशु क्रूरता निवारण अधिनियम में तमिलनाडु का संशोधन खेल पर सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिबंध के विपरीत है। **(ii)** क्या जल्लीकट्टू तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है। **(iii)** क्या पशु क्रूरता निवारण (तमिलनाडु संशोधन) अधिनियम, 2017 पशुओं के समानता और जीवन के अधिकार का उल्लंघन करता है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • मई 2014 में, एनिमल वेलफेयर बोर्ड ऑफ इंडिया बनाम ए. नागराजा (2014 आईएनएससी 370) ("**ए. नागराजा** ") मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जल्लीकट्टू और बैलगाड़ी दौड़ पर प्रतिबंध लगा दिया। इसने माना कि पशु क्रूरता

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		निवारण अधिनियम, 1960 (" **पीसीए अधिनियम** ") के अनुसार, इन प्रथाओं से पशुओं को अनावश्यक दर्द और पीड़ा होती है। • जनवरी 2017 में, तमिलनाडु सरकार ने पशु क्रूरता निवारण (तमिलनाडु संशोधन) अधिनियम, 2017 पारित किया, जिसने जल्लीकट्टू के खेल को अनुमति दी और इसके अभ्यास को नियंत्रित करने के लिए नियम पेश किए। महाराष्ट्र विधानमंडल ने बैलगाड़ी दौड़ की अनुमति देने के लिए पीसीए अधिनियम में इसी तरह के संशोधन किए और कर्नाटक राज्य ने राज्य में बैलगाड़ी दौड़ कंबाला के आयोजन के लिए कठोर विनियामक उपाय निर्धारित करने वाले नियम जारी किए। • पशु अधिकार कार्यकर्ताओं और संगठनों के एक समूह ने संशोधनों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी क्योंकि यह ए. नागराजा मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लंघन है । याचिकाओं में यह भी कहा गया कि केवल केंद्र सरकार के पास ही पीसीए अधिनियम के तहत नियम बनाने का अधिकार है और इसलिए तमिलनाडु विधानमंडल द्वारा बनाए गए नियम अमान्य हैं और इसलिए लागू नहीं होते। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** ○ सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जल्लीकट्टू की अनुमति देने वाला पशु क्रूरता निवारण (तमिलनाडु संशोधन) अधिनियम, 2017 ए. नागराजा में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विपरीत नहीं है । न्यायालय ने माना कि ए. नागराजा में जल्लीकट्टू से संबंधित जिन मुद्दों को उठाया गया था , उन्हें राज्य संशोधन अधिनियमों द्वारा खेल के संचालन के दौरान जानवरों के दर्द और पीड़ा को कम करके दूर किया गया है। न्यायालय ने आगे कहा कि जल्लीकट्टू तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है और समानता और जीवन के मौलिक अधिकारों को जानवरों तक नहीं बढ़ाया जा सकता। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** संशोधनों ने क्रूरता को कम किया • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि तीन राज्यों के संशोधन अधिनियमों द्वारा अनुमति प्राप्त जल्लीकट्टू, कंबाला और बैलगाड़ी दौड़ के खेल ने बैलों को होने वाले दर्द और पीड़ा को कम किया। न्यायालय ने उल्लेख किया कि राज्यों द्वारा बनाए गए नियमों में खेलों के आयोजन के लिए अलग-अलग मैदान निर्दिष्ट किए गए हैं, जिसमें बैल दौड़ और बैल संग्रह दोनों क्षेत्रों की स्थापना और दर्शकों को बैलों के सीधे संपर्क में आने से बचाने के लिए गैलरी बनाना शामिल है। न्यायालय ने उल्लेख किया कि ए. नागराजा ने जल्लीकट्टू पर प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि इस खेल के दौरान जानवरों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था, लेकिन राज्य द्वारा संशोधन के बाद अधिकांश हानिकारक प्रथाओं को काफी हद तक कम कर दिया गया है। इस प्रकार, संशोधन ए. नागराजा निर्णय के विपरीत नहीं हैं । जल्लीकट्टू एक सांस्कृतिक प्रथा है • सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि जल्लीकट्टू तमिलनाडु राज्य में कम से कम पिछली कुछ शताब्दियों से चल रहा है, लेकिन यह तमिल संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है या नहीं, इसके लिए धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विश्लेषण की आवश्यकता है, जो एक ऐसा कार्य है जिसे न्यायपालिका नहीं कर सकती (धारा 40(ii))। न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि राज्य ने जल्लीकट्टू को तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा माना है और न्यायालय ने विधायिका के इस दृष्टिकोण में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया है (धारा 40(ii))। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि ए. नागराजा में परिलक्षित यह दृष्टिकोण कि जल्लीकट्टू का प्रदर्शन तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा नहीं है, सही नहीं है (धारा 40(ii))। मौलिक अधिकार पशुओं तक नहीं बढ़ाए जाएंगे • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जो बताता हो कि पशुओं के पास मौलिक अधिकार हैं। न्यायालय ने याद दिलाया कि ए. नागराजा निर्णय में भी यह नहीं कहा गया है कि पशुओं के पास मौलिक अधिकार हैं। न्यायालय के अनुसार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार किसी कानून को तर्कसंगतता के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। हालाँकि, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 का उपयोग पशु द्वारा नहीं किया जा सकता। राज्य सरकार को संशोधन पारित करने का अधिकार था • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण (तमिलनाडु संशोधन) अधिनियम, 2017 का प्राथमिक ध्यान भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची III (पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण) की प्रविष्टि 17 से संबंधित है। सातवीं अनुसूची की संवैधानिक योजना के तहत, संघ और राज्य दोनों को सूची III के तहत मुद्दों से संबंधित कानून बनाने का अधिकार है। पीसीए अधिनियम में संशोधन पारित करने से पहले, तमिलनाडु ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 254(2) के तहत राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त की, जो यह प्रावधान करता है कि यदि कोई राज्य सरकार किसी ऐसे विषय पर कानून बनाती है, जिसके बारे में राज्य और केंद्र सरकार दोनों कानून बना सकते हैं (सूची III), और राज्य का कानून केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए पिछले कानून से टकराता है, तो राज्य का कानून तब भी लागू हो सकता है, जब राष्ट्रपति इसे मंजूरी देते हैं । निर्णय देखें
15	**क्या दिल्ली सरकार या दिल्ली के उपराज्यपाल का दिल्ली की सिविल सेवाओं पर नियंत्रण है।**	**दिल्ली सरकार बनाम भारत संघ** **2023 आईएनएससी 517** **(11 मई 2023)** सी.ए. संख्या 2357/2017 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति मुकेशकुमार आर. शाह, न्यायमूर्ति कृष्ण मुरारी, न्यायमूर्ति हिमा कोहली, न्यायमूर्ति पमिदिघनतम एस. नरसिम्हा **प्रश्न:** क्या राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार ("**जीएनसीटीडी**") या केंद्र सरकार (दिल्ली के उपराज्यपाल के माध्यम से कार्य कर रही) का संविधान की अनुसूची VII की राज्य सूची की प्रविष्टि 41 के अनुसार दिल्ली में सिविल "सेवाओं" पर नियंत्रण है।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		तथ्यात्मक पृष्ठभूमि: ○ 21 मई 2015 को, केंद्र सरकार ने एक राष्ट्रपति अधिसूचना (" **2015 अधिसूचना** ") जारी की, जिसमें कहा गया कि दिल्ली के उपराज्यपाल दिल्ली में "सेवाओं" (यानी, सिविल सेवाओं) पर नियंत्रण रखेंगे। संविधान की अनुसूची VII राज्य सूची की प्रविष्टि 41 के तहत "सेवाओं" को सूचीबद्ध करती है और इस प्रकार, राज्य सरकारें आमतौर पर राज्य में सिविल सेवाओं को नियंत्रित करती हैं। हालाँकि, 2015 की अधिसूचना ने "सेवाओं" को GNCTD के नियंत्रण से हटा दिया और सिविल सेवाओं को दिल्ली के उपराज्यपाल के नियंत्रण में रख दिया। GNCTD ने 2015 की अधिसूचना को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** ○ सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संविधान की अनुसूची VII की सूची II की प्रविष्टि 41 के तहत जीएनसीटीडी के पास "सेवाओं" पर विधायी और कार्यकारी शक्ति थी। इस प्रकार, सिविल सेवाओं और सिविल सेवकों के स्थानांतरण या निलंबन पर निगरानी रखने या नियंत्रण रखने की शक्ति से संबंधित मामलों में, दिल्ली के उपराज्यपाल जीएनसीटीडी के मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से बंधे होंगे। हालाँकि, क्योंकि अनुच्छेद 239AA केंद्र सरकार को दिल्ली में सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस और भूमि पर विशेष विधायी शक्ति प्रदान करता है, इसलिए न्यायालय ने माना कि संघ सरकार शासन के इन विशिष्ट क्षेत्रों से संबंधित सिविल सेवाओं पर शक्ति का प्रयोग करेगी। न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** संविधान के तहत दिल्ली सरकार की विधायी और कार्यकारी शक्तियां • सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली एनसीटी सरकार बनाम भारत संघ में 2018 के अपने संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) के फैसले का हवाला देते हुए कहा कि संविधान के अनुच्छेद 239एए के आधार पर दिल्ली एनसीटी की एक विशिष्ट प्रकृति है और यह इसे अन्य केंद्र शासित प्रदेशों से अलग करता है। चूंकि कार्यकारी शक्ति विधायी शक्ति के साथ सह-व्यापक है, एनसीटीडी की कार्यकारी शक्ति उन सभी मामलों तक विस्तारित है जिनके संबंध में जीएनसीटीडी को कानून बनाने की शक्ति है । अनुच्छेद 239एए में कहा गया है कि दिल्ली की विधानसभा को राज्य सूची या समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किसी भी मामले के संबंध में दिल्ली के लिए कानून बनाने की शक्ति होगी " जहां तक ऐसा कोई मामला केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू होता है " राज्य सूची में सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस और भूमि की कुछ अपवर्जित प्रविष्टियों से संबंधित मामलों को छोड़कर। • भारत संघ ने तर्क दिया था कि अनुच्छेद 239AA(3)(a) में " जहां तक ऐसा कोई मामला केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू होता है " वाक्यांश का अर्थ है कि GNCTD के पास किसी प्रविष्टि पर कानून बनाने की शक्ति तभी है जब ऐसी प्रविष्टि सभी केंद्र शासित प्रदेशों पर एक वर्ग के रूप में स्पष्ट रूप से लागू हो । हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने इस तर्क को खारिज कर दिया और माना कि अनुच्छेद 239AA में वाक्यांश एक समावेशी शब्द था और इसका अर्थ यह लगाया कि दिल्ली की विधानसभा को राज्य या समवर्ती सूचियों में किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति है, सिवाय अनुच्छेद 239AA(3)(a) के तहत सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस और भूमि के स्पष्ट रूप से बहिष्कृत विषयों को छोड़कर। दिल्ली का विशेष दर्जा • सर्वोच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि यदि " जहां तक ऐसा कोई मामला केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू होता है " वाक्यांश की व्याख्या अनुच्छेद 239AA(3) द्वारा स्पष्ट रूप से बहिष्कृत की गई प्रविष्टियों की तुलना में कई अधिक प्रविष्टियों को बाहर करने के लिए की जाती है, तो यह अन्य केंद्र शासित प्रदेशों पर दिल्ली को "विशेष दर्जा" देने के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा । दिल्ली के लिए यह "विशेष दर्जा" (69वें संविधान संशोधन द्वारा प्रदान किया गया) स्थानीय शासन और लोकतांत्रिक लोकप्रिय प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए दिल्ली में एक विधान सभा की शुरुआत करता है। दिल्ली विधानमंडल की विधायी शक्तियों को कम करने से दिल्ली के लोगों के स्थानीय हितों और राष्ट्रीय राजधानी के सुशासन के लिए संघ के राष्ट्रीय हितों के बीच संतुलन बिगड़ जाएगा। सिविल सेवकों की भूमिका • सर्वोच्च न्यायालय ने भारत जैसे आधुनिक संसदीय लोकतंत्र में सिविल सेवकों की भूमिका के अंतर्निहित सिद्धांतों पर भी चर्चा की। इसने जवाबदेही की त्रिस्तरीय श्रृंखला का उल्लेख किया, जिसके कारण एक जिम्मेदार लोकतांत्रिक सरकार बनी, जिसमें सिविल सेवक निर्वाचित मंत्रियों के प्रति उत्तरदायी थे; मंत्री विधायिका के प्रति जवाबदेह थे; और विधायिका अंततः मतदाताओं के प्रति जवाबदेह थी। सिविल सेवकों ने एक जिम्मेदार सरकार की नींव रखी, क्योंकि वे सरकार के निर्णयों और नीतियों को लागू करते थे और प्रशासित करते थे, जो कि मतदाताओं की इच्छा थी। इसलिए, यदि सिविल सेवक और "सिविल सेवाएँ" निर्वाचित प्रतिनिधियों के नियंत्रण में नहीं थीं, तो इससे गैर-जवाबदेह और गैर-उत्तरदायी सिविल सेवक पैदा हो सकते थे, जो निर्वाचित मंत्री और अप्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं की इच्छा की अवहेलना करेंगे । अतिरिक्त अवलोकन • भारत संघ ने प्रस्तुत किया था कि जीएनसीटीडी के पास सूची II की प्रविष्टि 41 पर विधायी क्षमता नहीं है क्योंकि संविधान का भाग XIV (जो संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं को कवर करता है) केंद्र शासित प्रदेशों के लिए किसी भी सेवा की परिकल्पना नहीं करता है। हालाँकि, सुप्रीम कोर्ट ने जनरल क्लॉज़ एक्ट, 1897 की धारा 3(58) में "राज्य" की समावेशी परिभाषा का उल्लेख किया, जहाँ "राज्य" शब्द में केंद्र शासित प्रदेश भी शामिल थे। इस प्रकार, भाग XIV दिल्ली जैसे केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू था । • सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना कि संविधान के अनुच्छेद 309 (संघ या राज्य की सिविल सेवाओं में सेवारत व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तों के संबंध में) के तहत संघ सरकार (भारत के राष्ट्रपति के माध्यम से) द्वारा नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग, अनुसूची VII में राज्य सूची की प्रविष्टि 41 पर कानून बनाने के लिए एनसीटीडी सरकार की विधायी शक्ति को समाप्त नहीं करेगा। निर्णय देखें

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
16	2022 में शिवसेना के विभाजन और महाराष्ट्र विधानसभा के सदस्यों के खिलाफ लंबित अयोग्यता याचिकाओं से उत्पन्न विभिन्न संवैधानिक प्रश्न।	**सुभाष देसाई बनाम प्रधान सचिव, महाराष्ट्र के राज्यपाल** **2023 आईएनएससी 516** **(11 मई 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 493/2022 **न्यायाधीश:** भारत के मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति मुकेशकुमार आर. शाह, न्यायमूर्ति कृष्ण मुरारी, न्यायमूर्ति हिमा कोहली, न्यायमूर्ति पमिदिघनतम एस. नरसिम्हा **प्रश्न:** **(i)** क्या अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को हटाने का नोटिस उन्हें संविधान की दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता (दलबदल के लिए) कार्यवाही पर निर्णय लेने से रोकता है। **(ii)** क्या उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय दसवीं अनुसूची के तहत दलबदल के लिए अयोग्यता याचिका पर फैसला कर सकते हैं यदि अध्यक्ष ने अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया है? **(iii)** सदस्यों के खिलाफ अयोग्यता याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान विधानमंडल में कार्यवाही की स्थिति क्या है? **(iv)** व्हिप और विधायक दल के नेता का निर्धारण करने में अध्यक्ष की क्या भूमिका है? **(v)** राज्यपाल के पास किसी व्यक्ति को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने का कितना विवेक है, और क्या अदालतें राज्यपाल के फैसले की समीक्षा कर सकती हैं? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • जून 2022 में, श्री उद्धव ठाकरे (" **याचिकाकर्ताओं** " का हिस्सा) महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री और शिवसेना विधायक दल (" **एसएसएलपी ") के पार्टी अध्यक्ष थे। श्री एकनाथ शिंदे (" प्रतिवादियों** " का हिस्सा) एसएसएलपी के समूह नेता थे। इसके बाद, एसएसएलपी दो गुटों में विभाजित हो गई - एक का नेतृत्व श्री ठाकरे और दूसरे का श्री शिंदे ने किया - और प्रत्येक पक्ष ने 'असली' एसएसएलपी होने का दावा किया। श्री शिंदे के गुट ने श्री ठाकरे के मुख्य सचेतक द्वारा जारी व्हिप का उल्लंघन किया, जिसमें विधानसभा के सभी शिवसेना सदस्यों (" **विधायकों** ") की बैठक बुलाई गई थी। इसके बाद श्री ठाकरे के नेतृत्व वाले गुट ने श्री शिंदे को एसएसएलपी के समूह नेता के पद से हटाने का प्रस्ताव जारी किया • इस समय महाराष्ट्र विधानसभा में अध्यक्ष का पद रिक्त था। उपसभापति ने अयोग्यता की कार्यवाही शुरू की और श्री शिंदे तथा उनके गुट को नोटिस जारी किया। बदले में श्री शिंदे के गुट ने उपसभापति को हटाने के लिए नोटिस जारी किया, इस आधार पर कि उपसभापति को अब राज्य विधानमंडल में बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है। नबाम रेबिया और बामंग फेलिक्स बनाम उपसभापति, अरुणाचल प्रदेश विधान सभा (2016 आईएनएससी 526) (" **नबाम रेबिया** ") में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) ने माना था कि इस तरह के नोटिस से अध्यक्ष को अयोग्यता की कार्यवाही तय करने से रोका जा सकता है। • इस बीच, महाराष्ट्र के राज्यपाल ने श्री ठाकरे को सदन में बहुमत साबित करने का अनुरोध करते हुए नोटिस जारी किया। बहुमत साबित करने से पहले ही श्री ठाकरे ने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद, भारतीय जनता पार्टी के विधायकों के समर्थन से श्री शिंदे को नया मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया और नए अध्यक्ष का चुनाव किया गया। • याचिकाकर्ताओं ने श्री शिंदे की मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्ति को रद्द करने की मांग करते हुए सुप्रीम कोर्ट में एक रिट याचिका दायर की, जबकि प्रतिवादियों ने एक और रिट याचिका दायर की जिसमें अनुरोध किया गया कि डिप्टी स्पीकर को श्री शिंदे के गुट के खिलाफ दसवीं अनुसूची के तहत कोई भी कार्रवाई करने से तब तक रोका जाए जब तक कि डिप्टी स्पीकर को हटाने का मुद्दा तय नहीं हो जाता। इन रिट याचिकाओं को मिलाकर सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई की गई। ○ श्री शिंदे ने चुनाव चिह्न (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 ("**चुनाव चिह्न आदेश") के तहत** भारत के चुनाव आयोग ("**चुनाव आयोग") के समक्ष एक याचिका भी दायर की** , जिसमें शिवसेना का चिह्न (यानी 'धनुष और तीर') उनके नेतृत्व वाले गुट को आवंटित करने की मांग की गई। चुनाव आयोग ने श्री शिंदे के पक्ष में फैसला सुनाया और श्री शिंदे के गुट को चिह्न प्रदान किया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अध्यक्ष को संबंधित राजनीतिक दल द्वारा नियुक्त व्हिप और विधायक दल के नेता को मान्यता देनी चाहिए। विभाजन की स्थिति में, अध्यक्ष यह तय कर सकता है कि किसी गुट के विधायकों को अयोग्य घोषित किया जाना चाहिए या नहीं और चुनाव आयोग यह तय कर सकता है कि पार्टी के चुनाव चिन्ह का इस्तेमाल कौन कर सकता है। ये दोनों निर्णय एक साथ लिए जा सकते हैं और न तो अध्यक्ष और न ही चुनाव आयोग को दूसरे के निर्णय का इंतजार करने की आवश्यकता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि असाधारण मामलों को छोड़कर, न तो उच्च न्यायालय और न ही सर्वोच्च न्यायालय संविधान की दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता की कार्यवाही का फैसला कर सकते हैं। न्यायालय ने आगे कहा कि एक विधायक को विधायी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, जबकि उसके खिलाफ अयोग्यता याचिकाएं लंबित हैं और विधायिका द्वारा लिए गए निर्णयों की वैधता पर केवल इसलिए सवाल नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि कुछ सदस्यों के खिलाफ अयोग्यता याचिकाएं लंबित हैं। • सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्यपाल को विधानमंडल में बहुमत सिद्ध करने के लिए किसी व्यक्ति को बुलाने का तभी औचित्य है, जब उसके पास वस्तुनिष्ठ तथ्यों के आधार पर यह विश्वास करने के कारण हों कि अमुक व्यक्ति विधानमंडल के बहुमत का विश्वास खो चुका है।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• इस मुद्दे पर कि क्या अध्यक्ष को हटाने का नोटिस लंबित होने पर अध्यक्ष अयोग्यता कार्यवाही का फैसला कर सकते हैं, नबाम रेबिया में निर्णय की सत्यता को सात न्यायाधीशों की एक बड़ी पीठ के पास भेजा गया था। जब तक इस मुद्दे पर सात न्यायाधीशों द्वारा निर्णय नहीं लिया जाता, तब तक न्यायालय ने माना कि अध्यक्ष को यह जांचने का अधिकार है कि उन्हें हटाने का प्रस्ताव वास्तविक था या केवल उन्हें अयोग्यता कार्यवाही पर निर्णय लेने से रोकने के लिए था। यदि अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव वास्तविक लगता है, तो वे अध्यक्ष को हटाने पर निर्णय समाप्त होने तक अयोग्यता कार्यवाही को रोक सकते हैं। अन्यथा, अध्यक्ष प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकते हैं। न्यायालय का निर्णय सर्वसम्मति से था और इसे मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने लिखा था। **निर्णय के कारण:** नबाम रेबिया को बड़ी बेंच में रेफर करना • सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया कि नबाम रेबिया की सत्यता संदेह में थी क्योंकि यह किहोटो होलोहान बनाम ज़चिल्हु (१९९१ आईएनएससी २८७) (" **किहोटो होलोहान** ") के फैसले के साथ विरोधाभासी था। नबाम रबिया में एक संविधान पीठ ने माना था कि एक बार अध्यक्ष को अयोग्यता की कार्यवाही का फैसला नहीं करना चाहिए, जब अध्यक्ष द्वारा खुद को हटाने की कार्यवाही शुरू की गई हो। किहोटो होलोहान में , एक अन्य संविधान पीठ ने माना था कि अयोग्यता की कार्यवाही का न्यायनिर्णयन करते समय अध्यक्ष की स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। यह देखते हुए कि दोनों फैसलों में अध्यक्ष की स्वतंत्रता पर अलग-अलग विचार थे, न्यायालय ने नबाम रेबिया की सत्यता को एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया। न्यायालय ने पाया कि नबाम रेबिया के तथ्य वर्तमान मामले से भिन्न थे उच्चतर न्यायालयों को अयोग्यता याचिकाओं पर प्रथम दृष्टया निर्णय लेने की शक्ति • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि स्पीकर को अयोग्यता याचिकाओं पर निष्पक्ष रूप से निर्णय लेने का काम नहीं सौंपा जा सकता क्योंकि उन्हें श्री शिंदे के विधायकों के समर्थन से नियुक्त किया गया था जिनके खिलाफ शुरू में दलबदल की कार्यवाही दायर की गई थी । सुप्रीम कोर्ट ने इस तर्क को खारिज कर दिया और माना कि दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 के तहत, स्पीकर के पास अयोग्यता याचिकाओं पर निर्णय लेने का विशेष अधिकार है। किसी भी असाधारण तथ्यात्मक परिस्थितियों को छोड़कर, न्यायालय को अयोग्यता याचिकाओं पर निर्णय नहीं लेना चाहिए। हालाँकि, न्यायालय स्पीकर के अंतिम निर्णय की समीक्षा कर सकता है । अयोग्यता याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान विधायिका में कार्यवाही की वैधता • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि अयोग्यता याचिकाओं पर निर्णय लिए जाने के दौरान विधानमंडल द्वारा लिए गए निर्णयों की वैधता अयोग्यता याचिकाओं के अंतिम परिणाम पर निर्भर करेगी । सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया और स्पष्ट किया कि यदि कोई सदस्य अयोग्य घोषित हो जाता है, तो उसकी सीट उसकी अयोग्यता की तिथि से ही रिक्त मानी जाएगी और विधायक को अयोग्य घोषित किए जाने तक विधानमंडल की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है। अन्यथा, अयोग्यता याचिकाओं के शुरू होते ही विधानमंडल के सभी निर्णय अनिश्चित और अव्यवहारिक हो जाएंगे। इस प्रकार, अयोग्यता याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान विधानमंडल में कार्यवाही वैध थी। विधायक दल के सचेतक और नेता की नियुक्ति • सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि दसवीं अनुसूची के तहत राजनीतिक दल और विधायक दल के बीच अंतर था और दोनों शब्द एक समान नहीं हैं। दसवीं अनुसूची के संदर्भ में, विधायक दल में केवल राजनीतिक दल के वे सदस्य शामिल होते हैं जिन्हें राजनीतिक दल द्वारा चुनाव के लिए खड़ा किया गया था और जो विधानमंडल में एक सीट के लिए चुने गए हैं । न्यायालय ने पाया कि अध्यक्ष को राजनीतिक दल द्वारा नियुक्त विधायक दल के सचेतक और नेता को मान्यता देनी चाहिए क्योंकि विधायक दल के सदस्य राजनीतिक दल से संबद्ध होने के कारण चुने जाते हैं और उस राजनीतिक दल के प्रति उनकी निष्ठा होती है । इसलिए, न्यायालय ने माना कि श्री ठाकरे के नेतृत्व वाले शिवसेना गुट द्वारा जारी एसएसएलपी के समूह नेता के रूप में श्री शिंदे को हटाने का प्रस्ताव वैध था क्योंकि यह शिवसेना पार्टी के संविधान के तहत राजनीतिक दल की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता था। 'असली' शिवसेना पार्टी कौन है, इसका निर्णय तथा पार्टी चिन्ह का आवंटन • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि जब दलबदल की कार्यवाही और इस बात पर विवाद कि कौन सा गुट पार्टी के प्रतीक का उपयोग कर सकता है (चुनाव आयोग के समक्ष) एक साथ उठे हैं, तो चुनाव आयोग द्वारा पार्टी के प्रतीक पर निर्णय लेने से पहले अयोग्यता की कार्यवाही का निर्णय किया जाना चाहिए क्योंकि बाद वाला विवाद यह निर्धारित करेगा कि दलबदल का निर्धारण करने के लिए वास्तविक राजनीतिक दल कौन था। हालांकि, न्यायालय ने कहा कि चुनाव आयोग एक साथ यह निर्णय ले सकता है कि अयोग्यता की कार्यवाही जारी रहने के दौरान भी कौन सा गुट पार्टी के प्रतीक का उपयोग कर सकता है, और दोनों निर्णय एक जैसे होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे अलग-अलग विचारों पर आधारित हैं। अध्यक्ष अयोग्यता याचिकाओं पर तब निर्णय लेते हैं जब वे शुरू की जाती हैं, जबकि चुनाव आयोग के निर्णय का केवल भावी प्रभाव होगा और अध्यक्ष के निर्णय को प्रभावित नहीं करेगा। दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 3 को हटाने का प्रभाव • दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 3 में कहा गया है कि यदि मूल राजनीतिक दल में 'विभाजन' होता है, जहां एक तिहाई या उससे अधिक सदस्य मूल राजनीतिक दल से अलग होकर एक अलग राजनीतिक दल बनाते हैं, तो विधानमंडल का कोई सदस्य अयोग्य नहीं माना जाएगा। हालांकि, संविधान (इक्यावनवां संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा पैराग्राफ 3 को हटा दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'विभाजन' का बचाव अब किसी भी सदस्य (सदस्यों) के लिए उपलब्ध नहीं है, जो अयोग्यता कार्यवाही का सामना कर रहे हैं, भले ही ऐसे सदस्य (सदस्यों) ने मूल राजनीतिक दल से संबंधित होने का दावा किया हो या नहीं। इस मामले में, दोनों गुटों ने 'मूल' शिवसेना राजनीतिक दल होने का दावा किया। राज्यपाल द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए मुख्यमंत्री को शक्ति परीक्षण का सामना करने का आदेश देना तथा किसी व्यक्ति को विधानमंडल में बहुमत साबित करने के लिए आमंत्रित करना

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राज्यपाल केवल कुछ वस्तुनिष्ठ सामग्री के आधार पर मुख्यमंत्री को अपना बहुमत साबित करने के लिए फ्लोर टेस्ट का आदेश दे सकते हैं, जो यह संकेत देता है कि मुख्यमंत्री ने विधायिका का विश्वास खो दिया है। इस मामले में, न्यायालय ने पाया कि ऐसी कोई वस्तुनिष्ठ सामग्री मौजूद नहीं थी और महाराष्ट्र के राज्यपाल ने केवल कुछ विधायकों के अनुरोध के आधार पर फ्लोर टेस्ट का आह्वान किया । हालाँकि यह कानून के अनुसार नहीं था, न्यायालय ने माना कि श्री ठाकरे ने फ्लोर टेस्ट का सामना करने से पहले स्वेच्छा से इस्तीफा दे दिया था और न्यायालय स्वैच्छिक इस्तीफे को उलट नहीं सकता। निर्णय देखें
17	अनुसूचित क्षेत्रों के भीतर गैर-आदिवासियों के लिए कानूनों की प्रयोज्यता और अधिकार।	**आदिवासी सामाजिक एवं मानवाधिकार कार्रवाई बनाम भारत संघ** **2023 आईएनएससी 512** **(10 मई 2023)** सी.ए. संख्या 2202/2012 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति अभय एस ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल **प्रश्न:** **(i)** क्या संघ और राज्य कानून अनुसूचित क्षेत्र पर लागू हो सकते हैं जब तक कि उक्त कानूनों को अनुसूचित क्षेत्र पर लागू करने के लिए उस राज्य के राज्यपाल द्वारा एक विशिष्ट अधिसूचना जारी नहीं की जाती है। **(ii)** क्या ऐसे व्यक्ति जो अनुसूचित जनजाति के सदस्य नहीं हैं, उन्हें अनुसूचित क्षेत्रों में बसने का अधिकार है। **(iii)** क्या गैर-अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को अनुसूचित क्षेत्र से विधान सभा या लोकसभा के चुनावों में वोट देने या चुनाव लड़ने का अधिकार होना चाहिए? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 31 दिसंबर 1977 को भारत के राष्ट्रपति ने उड़ीसा राज्य के सुंदरगढ़ जिले को भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची के खंड 6(2) के तहत अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया। अनुसूचित क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें आदिवासी समुदायों की महत्वपूर्ण आबादी रहती है। संविधान की पांचवीं अनुसूची राष्ट्रपति को उस क्षेत्र में आदिवासी समुदायों के हितों और कल्याण की रक्षा के लिए राज्यों के भीतर कुछ क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार देती है। राज्यपाल के पास पांचवीं अनुसूची के खंड 5(1) के तहत अधिसूचना जारी करके अनुसूचित क्षेत्रों पर केंद्रीय और राज्य कानूनों की प्रयोज्यता को बदलने की शक्ति है। • याचिकाकर्ता एक ऐसा समाज था जो अनुसूचित जनजातियों के हितों और मौलिक अधिकारों का प्रतिनिधित्व करता था। उन्होंने रिट याचिका के माध्यम से उड़ीसा उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसमें तर्क दिया गया कि अनुसूचित क्षेत्रों में केवल अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को ही निवास करने और मतदान करने का अधिकार है। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा कि संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाया गया कोई भी कानून ऐसे अनुसूचित क्षेत्रों पर तब तक लागू नहीं होगा जब तक राज्यपाल पांचवीं अनुसूची के तहत अधिसूचना जारी नहीं करते। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका खारिज कर दी। याचिकाकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उड़ीसा राज्य पर लागू होने वाले केंद्रीय और राज्य कानून उड़ीसा राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों पर तब तक लागू होते रहेंगे जब तक राज्यपाल पांचवीं अनुसूची के खंड 5(1) के तहत यह घोषित नहीं कर देते कि कोई विशेष कानून अनुसूचित क्षेत्र पर लागू नहीं होता। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि गैर-आदिवासियों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ई) के आधार पर अनुसूचित क्षेत्र में बसने का अधिकार है जो प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भी हिस्से में बसने का अधिकार देता है। इसके अलावा, गैर-आदिवासियों सहित किसी भी व्यक्ति को अनुसूचित क्षेत्रों में भी वोट देने का अधिकार है। ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि अनुसूचित क्षेत्रों में लोकसभा और राज्य विधानसभा चुनावों के लिए सभी निर्वाचन क्षेत्र केवल अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित हैं। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ओका द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** अनुसूचित क्षेत्र पर संघ और राज्य कानूनों की प्रयोज्यता • इस मामले में कानून का मुख्य प्रश्न यह था कि क्या राज्यपाल द्वारा जारी की गई विशिष्ट अधिसूचना के बिना संघ और राज्य के कानून अनुसूचित क्षेत्र में लागू होंगे। संविधान की पांचवीं अनुसूची के खंड 5 का अर्थ यह माना गया कि राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा निर्देश दे सकते हैं कि संसद या राज्य विधानमंडल का कोई विशेष कानून अनुसूचित क्षेत्र पर लागू नहीं होगा या कुछ संशोधनों के साथ ऐसे अनुसूचित क्षेत्र पर लागू होगा। • सुप्रीम कोर्ट ने चेब्रोलू लीला प्रसाद राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2020 INSC 344) में सुप्रीम कोर्ट के संविधान पीठ के फैसले का हवाला दिया और कहा कि इस फैसले में स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है कि सभी केंद्रीय और राज्य कानून स्वचालित रूप से अनुसूचित क्षेत्र पर लागू होते हैं जब तक कि राज्यपाल ने पांचवीं अनुसूची के खंड 5 के तहत अधिसूचना जारी नहीं की हो या अनुसूचित क्षेत्र में इसके लागू होने में उस कानून में कुछ संशोधन पेश नहीं किए हों । इसलिए, पांचवीं अनुसूची के खंड 5 के तहत राज्यपाल की शक्ति यह निर्देश देने तक सीमित है कि कोई विशेष संघ या राज्य कानून अनुसूचित क्षेत्र में लागू नहीं होगा या यह कुछ संशोधनों के साथ लागू होगा। राज्यपाल की शक्तियाँ और मौलिक अधिकार • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पांचवीं अनुसूची के खंड 5 के तहत राज्यपाल द्वारा शक्ति का प्रयोग भारत के संविधान के भाग III के तहत मौलिक अधिकारों को खत्म या उल्लंघन नहीं कर सकता है। राज्यपाल की यह शक्ति संसद और राज्य विधानसभाओं की कानून बनाने की शक्ति के बराबर है और इस शक्ति का प्रयोग केवल मौलिक अधिकारों और संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन ही किया जाना चाहिए ।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		मतदान का अधिकार और अनुसूचित क्षेत्रों में आरक्षण • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मतदान का अधिकार जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 ("**आरपीए 1950**") के भाग III द्वारा शासित था। आरपीए 1950 ने अनुसूचित क्षेत्रों में मतदान के अधिकार को केवल आदिवासी आबादी तक सीमित नहीं किया। इसलिए, कोई भी भारतीय नागरिक जो वोट देने के लिए पात्र है, जिसमें गैर-आदिवासी भी शामिल हैं, अनुसूचित क्षेत्र में मतदान कर सकते हैं। • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि निर्वाचन क्षेत्रों के लिए आरक्षण भारत के संविधान के अनुच्छेद 330 और 332 के अनुसार किया जाना था और इन प्रावधानों में यह प्रावधान नहीं था कि अनुसूचित क्षेत्रों के सभी निर्वाचन क्षेत्र अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित होने चाहिए। 2002 का परिसीमन अधिनियम अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू होता है और यहाँ तक कि इसमें अनुसूचित क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के लिए विशिष्ट आरक्षण का प्रावधान नहीं किया गया है। निर्णय देखें
18	**संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पक्षों की सहमति के आधार पर तलाक देने की सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति।**	**शिल्पा शैलेश बनाम वरुण श्रीनिवासन** **2023 आईएनसी 468** **(1 मई 2023)** टी.पी.(सी) नंबर 1118/2014 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति अभय एस. ओका, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ, न्यायमूर्ति जितेंद्र के. माहेश्वरी **प्रश्न:** **(i)** क्या सुप्रीम कोर्ट संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13बी के तहत प्रतीक्षा अवधि को दरकिनार करते हुए, पक्षों की आपसी सहमति के आधार पर तलाक दे सकता है, (**"एचएमए"**), और अन्य संबंधित कार्यवाही को भी रद्द कर सकता है। यदि हाँ, तो इस शक्ति की रूपरेखा क्या है? **(ii)** क्या सुप्रीम कोर्ट विवाह के अपूरणीय रूप से टूटने के मामलों में एक पति या पत्नी की आपत्ति के बावजूद अनुच्छेद 142 के तहत तलाक दे सकता है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • तलाक की कार्यवाही को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित करने के लिए सुप्रीम कोर्ट में स्थानांतरण याचिका दायर की गई थी। कार्यवाही के दौरान, पक्षकार आपसी सहमति से तलाक के लिए सहमत हुए और एक समझौते पर पहुंचे। पक्षों ने अपने विवाह को समाप्त करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सुप्रीम कोर्ट से हस्तक्षेप करने की मांग की। संविधान का अनुच्छेद 142(1) सुप्रीम कोर्ट को उसके समक्ष 'किसी भी मामले या मामले' में 'पूर्ण न्याय' करने की शक्ति प्रदान करता है। • सुप्रीम कोर्ट की एक खंडपीठ (दो जजों) ने पाया कि विवाह में ऐसी दरार आ गई थी जिसे सुधारा नहीं जा सकता। पारिवारिक न्यायालयों में लंबित मामलों को देखते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने अनुच्छेद 142 के तहत विवाह को भंग कर दिया, जिससे एचएमए के तहत पारिवारिक न्यायालय में लंबी प्रक्रिया को दरकिनार कर दिया गया। • सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 142 के तहत राहत मांगने वाले ऐसे ही मामलों में वृद्धि को स्वीकार किया। 29 जून 2016 को, पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत न्यायालय की शक्ति के दायरे को स्पष्ट करने के लिए मामले को संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) को भेज दिया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • संविधान पीठ ने कहा कि सुप्रीम कोर्ट दोनों पक्षों के बीच हुए समझौते को दर्ज कर सकता है और एचएमए के तहत प्रक्रियात्मक आवश्यकता से बंधे बिना संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए आपसी सहमति से तलाक का आदेश पारित करके विवाह को भंग कर सकता है। न्यायालय ने यह भी माना कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय आपराधिक कार्यवाही सहित पक्षों के बीच अन्य कार्यवाही को रद्द और अलग कर सकता है। • इसके अलावा, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 142(1) के तहत, अगर विवाह पूरी तरह से टूट चुका है, तो सुप्रीम कोर्ट तलाक दे सकता है, भले ही एक पक्ष तलाक की प्रार्थना का विरोध करता हो। अंत में, कोर्ट ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 142 के तहत विवाह को समाप्त करने के लिए पक्ष सीधे सुप्रीम कोर्ट नहीं जा सकते। इसके बजाय, पक्षों को प्रथम दृष्टया न्यायालय के रूप में पारिवारिक न्यायालय से संपर्क करना होगा। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजीव खन्ना द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142(1) के तहत सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति का दायरा और दायरा • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संविधान का अनुच्छेद 142(1) सर्वोच्च न्यायालय को किसी भी 'कारण या मामले' में 'पूर्ण न्याय' करने की व्यापक शक्ति देता है। न्यायालय ने माना कि यह शक्ति, व्यापक होते हुए भी, सामान्य सार्वजनिक नीति (मौलिक अधिकार, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद और भारत के संविधान की अन्य बुनियादी विशेषताएं) और विशिष्ट सार्वजनिक नीति (जैसे किसी क़ानून में कुछ स्पष्ट निषेध) के मौलिक विचारों द्वारा नियंत्रित है । यह माना गया कि जबकि न्यायालय नए कानून नहीं बना सकता है या स्पष्ट वैधानिक प्रावधानों की अवहेलना नहीं कर सकता है, यह उन क्षेत्रों में हस्तक्षेप कर सकता है जहां कानून अस्पष्ट है। जब तक न्यायालय के कार्य इन मौलिक सिद्धांतों को बनाए रखते हैं, तब तक न्यायालय पक्षों के बीच 'पूर्ण न्याय' करने के लिए प्रक्रियात्मक और मूल कानूनों से विचलित हो सकता है ।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 142(1) के तहत तलाक का आदेश दे सकता है • एचएमए की धारा 13-बी आपसी सहमति से तलाक का प्रावधान करती है, जो न्यूनतम छह महीने और अधिकतम अठारह महीने की अनिवार्य कूलिंग-ऑफ अवधि के अधीन है। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि छह महीने की कूलिंग-ऑफ अवधि को असाधारण परिस्थितियों में माफ किया जा सकता है, जहां लंबी अदालती कार्यवाही ने पहले ही पक्षों को काफी परेशान कर दिया है। कूलिंग-ऑफ अवधि का उद्देश्य पीड़ा को लंबा करना या अपूरणीय रूप से टूटी हुई शादियों को बचाना नहीं है। यदि सुलह के प्रयास विफल हो जाते हैं और विवाह पूरी तरह से अव्यवहारिक है, तो न्यायालय कूलिंग-ऑफ अवधि की प्रतीक्षा किए बिना तलाक दे सकता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने अंततः माना कि संविधान के अनुच्छेद 142(1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वह पक्षों को ट्रायल कोर्ट के समक्ष संयुक्त प्रस्ताव दाखिल करने की आवश्यकता के बिना आपसी सहमति के आधार पर तलाक दे सकता है । भले ही मुख्य मामला कहीं और लंबित हो, सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति आपसी सहमति से तलाक देने तक विस्तारित होती है, जिससे कई अदालतों और पक्षों पर बोझ कम होता है। पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर, न्यायालय के पास उनके बीच लंबित अन्य कार्यवाहियों, चाहे वह सिविल हो या आपराधिक, को उचित तरीके से निपटाने की शक्ति है। न्यायालय अनुच्छेद 142(1) के तहत तलाक दे सकता है, भले ही पति या पत्नी में से कोई एक ऐसी प्रार्थना का विरोध करता हो • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 142 के तहत, वह दोनों पक्षों की सहमति के बिना भी विवाह को (विवाह के अपूरणीय रूप से टूटने के आधार पर) भंग कर सकता है । हालांकि, उसने देखा कि इस तरह के उपाय को अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है, बल्कि यह न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति है, जिसके लिए कई कारकों पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। विवाह की अवधि, लंबी अलगाव अवधि, आरोपों की प्रकृति, सुलह के प्रयास, समय-समय पर कानूनी कार्यवाही में पारित आदेश जैसे कारकों का संचयी रूप से मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इन तथ्यों का मूल्यांकन पक्षों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, जिसमें उनकी शैक्षणिक योग्यताएं, क्या पक्षों के कोई बच्चे हैं, उनकी आयु, क्या पति या पत्नी और बच्चे आश्रित हैं। बच्चों की हिरासत, गुजारा भत्ता और अन्य लंबित मामले भी प्रासंगिक हैं । कोई भी पक्ष विवाह के अपरिवर्तनीय विघटन के आधार पर तलाक लेने के लिए रिट याचिका दायर करके सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटा सकता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि कोई पक्ष न्यायालय के आदेश से व्यथित है, तो वे सीधे सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में जाकर संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाओं के माध्यम से विवाह के अपरिवर्तनीय विघटन के आधार पर तलाक नहीं मांग सकते। इसके बजाय, उन्हें उचित उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण में अपील करनी चाहिए। उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार संविधान के भाग III के तहत मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए है, न कि न्यायिक आदेशों को चुनौती देने के लिए। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 32 के माध्यम से सीधे तलाक की राहत नहीं मांगी जा सकती। निर्णय देखें
19	**मीडिया वन टेलीविजन चैनल के संचालन पर केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रतिबंधों को संवैधानिक चुनौती।**	**मध्यम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** **2023 आईएनएससी 324** **(5 अप्रैल 2023)** सी.ए. क्रमांक 8129/2022 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति हिमा कोहली **प्रश्न:** क्या सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (**"एमआईबी") द्वारा जारी आदेश, जिसमें मध्यमम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड ("एमबीएल")** को टेलीविजन चैनल मीडिया वन संचालित करने के लिए दी गई अपलिंकिंग और डाउनलिंकिंग अनुमति को नवीनीकृत करने से इनकार करना, संविधान के तहत एमबीएल के अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 19 अप्रैल 2010 को एमबीएल ने अपने समाचार और समसामयिक मामलों के टेलीविजन चैनल 'मीडिया वन' को अपलिंक और डाउनलिंक करने की अनुमति के लिए आवेदन किया। 30 सितंबर 2011 को एमआईबी ने एमबीएल को 'भारत से टेलीविजन चैनलों की अपलिंकिंग के लिए नीतिगत दिशा-निर्देशों' के तहत दस साल की अवधि के लिए मीडिया वन को अपलिंक करने की अनुमति दी। • 3 मई 2021 को, एमबीएल ने मीडिया वन को दी गई अनुमति के नवीनीकरण के लिए आवेदन किया। एमआईबी ने एमबीएल को कारण बताओ नोटिस जारी किया कि उन्हें दी गई अनुमति क्यों न रद्द कर दी जाए, क्योंकि गृह मंत्रालय (**"एमएचए"**) ने एमबीएल को सुरक्षा मंज़ूरी देने से इनकार कर दिया था। • 31 जनवरी 2022 को, MIB ने मीडिया वन की अपलिंकिंग और डाउनलिंकिंग के लिए MBL की अनुमति रद्द कर दी। कारण यह बताया गया कि सुरक्षा मंजूरी से इनकार करने के कारण, कंपनी टीवी चैनलों की अपलिंकिंग और डाउनलिंकिंग के लिए अनुमति के नवीनीकरण की पात्रता आवश्यकता को पूरा करने में विफल रही। • एमबीएल ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत केरल उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें मीडिया वन के लिए अपलिंकिंग और डाउनलिंकिंग की अनुमति रद्द करने के एमआईबी के आदेश को चुनौती दी गई। भारत संघ की दलीलें 'सीलबंद लिफाफे' के ज़रिए दी गईं (यानी, उन्हें एमबीएल या जनता को उपलब्ध नहीं कराया गया)। संघ ने उच्च न्यायालय को बताया कि खुफिया ब्यूरो (**"आईबी"**) द्वारा दिए गए इनपुट के आधार पर एमबीएल को सुरक्षा मंज़ूरी देने से मना कर दिया गया, जो संवेदनशील और गुप्त प्रकृति के हैं। आगे कहा गया कि गृह मंत्रालय राष्ट्रीय सुरक्षा कारणों से सुरक्षा मंज़ूरी देने से इनकार करने के कारणों का खुलासा नहीं कर सकता।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• 8 फरवरी 2022 को केरल उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका खारिज कर दी। एकल न्यायाधीश के फैसले को उच्च न्यायालय की खंडपीठ (दो न्यायाधीशों) के समक्ष चुनौती दी गई। 2 मार्च 2022 को खंडपीठ ने अपील खारिज कर दी। एमबीएल ने केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष केंद्र सरकार ने तर्क दिया कि एमबीएल के जमात-ए-इस्लामी हिंद ("**जेईआई-एच**") से घनिष्ठ संबंध हैं और इसलिए यह सुरक्षा के लिए खतरा है। • 15 मार्च 2022 को सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संवेदनशील फाइलों (जो उच्च न्यायालय के समक्ष सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत की गई थीं) की सामग्री को याचिकाकर्ताओं के समक्ष प्रकट किया जाना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय सुप्रीम कोर्ट के अंतिम निर्णय द्वारा किया जाएगा। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने माना कि मीडिया वन को अपलिंकिंग और डाउनलिंकिंग करने के लिए एमबीएल की अनुमति रद्द करने का एमआईबी का आदेश असंवैधानिक था। न्यायालय का यह फैसला मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ ने लिखा था। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एमबीएल के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है क्योंकि: (i) मीडिया वन का लाइसेंस रद्द करने के एमआईबी के आदेश में सुरक्षा मंजूरी से इनकार करने का कोई कारण नहीं था और (ii) संघ के कारणों का एमबीएल को खुलासा नहीं किया गया था और केवल न्यायालय को बताया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि मीडिया चैनल संचालित करने की अनुमति का नवीनीकरण न करना प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध है जिसे संविधान के अनुच्छेद 19(2) में निर्धारित आधारों पर ही उचित रूप से प्रतिबंधित किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मीडिया वन का कथित सत्ता-विरोधी रुख और चैनल के शेयरधारकों का जेईआई-एच से कथित संबंध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के वैध कारण नहीं हैं। न्यायालय ने एमआईबी को निर्देश दिया कि वह न्यायालय के फैसले के अनुसार चार सप्ताह के भीतर नवीनीकरण अनुमति जारी करने के साथ आगे बढ़े। **निर्णय के कारण:** • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'भारत से टेलीविजन चैनलों की अपलिंकिंग के लिए नीति दिशानिर्देश' के पैराग्राफ 10 में मौजूदा अनुमतियों के नवीनीकरण के लिए शर्तें निर्धारित की गई हैं। अपलिंकिंग दिशानिर्देशों के पैराग्राफ 10.2 में कहा गया है कि चैनल को पांच से अधिक मौकों पर कार्यक्रम संहिता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। न्यायालय ने पाया कि मीडिया वन ने पांच या उससे अधिक मौकों पर कार्यक्रम संहिता का उल्लंघन नहीं किया है। सुरक्षा मंजूरी देने से इनकार करने के कारण बताए जाने चाहिए • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि गृह मंत्रालय ने सुरक्षा मंजूरी न देने के अपने कारणों को केवल उच्च न्यायालय को बताया, और एमबीएल को इन कारणों का सारांश भी नहीं दिया गया। न्यायालय के अनुसार, इसने संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत प्रेस की स्वतंत्रता को कमजोर किया और एमआईबी के फैसले को चुनौती देने के लिए एक उचित अवसर से वंचित किया, जिसने एमबीएल के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया। न्यायालय ने कहा कि सुरक्षा मंजूरी न देने के कारणों का सारांश न्यूनतम प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का गठन करता है, और गृह मंत्रालय द्वारा अपने कारणों का खुलासा न करना एक अनुचित और मनमाना दृष्टिकोण दर्शाता है। • सुप्रीम कोर्ट ने सीलबंद लिफाफे में साक्ष्य स्वीकार करने की प्रथा को अस्वीकार कर दिया। इसने कहा कि एमबीएल को सुरक्षा मंजूरी देने से इनकार करने के कारणों का खुलासा न करना और केवल सीलबंद लिफाफे में न्यायालय के समक्ष खुलासा करना प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों से समझौता करता है। यह माना गया कि जब प्रासंगिक सामग्री को सीलबंद लिफाफे में प्रकट किया जाता है, तो यह गोपनीयता और अपारदर्शिता की संस्कृति को कायम रखता है, और पीड़ित पक्ष (इस मामले में एमबीएल) के लिए फैसले को चुनौती देना कठिन बना देता है । सुरक्षा मंज़ूरी देने से इनकार करने का गलत तर्क • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि मीडिया वन और जेईआई-एच के शेयरधारकों के बीच कथित संबंध और इसके कथित सत्ता-विरोधी रुख के कारण एमबीएल को सुरक्षा मंजूरी नहीं दी गई थी। न्यायालय ने पाया कि आईबी ने एमबीएल और जेईआई-एच के बीच संबंध स्थापित करने के लिए केवल एमबीएल के प्रकाशित लेखों की सामग्री और 'स्वर' तथा मीडिया वन के प्रसारित कार्यक्रमों की सामग्री पर भरोसा किया था । न्यायालय ने माना कि सबसे पहले, जेईआई-एच प्रतिबंधित संगठन नहीं है, और इसलिए, यह तर्क कि जेईआई-एच के साथ संबंध राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करेंगे, स्वीकार नहीं किया जा सकता है, और दूसरी बात, यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि एमबीएल के शेयरधारक जेईआई-एच के समर्थक हैं । यह भी माना गया कि आईबी की रिपोर्ट पूरी तरह से उस जानकारी से निकाला गया अनुमान है जो पहले से ही सार्वजनिक डोमेन में है और इस जानकारी के बारे में गोपनीयता का आधार आकर्षित करने के लिए कुछ भी 'गुप्त' नहीं है। • आईबी रिपोर्ट की गोपनीयता के मामले में, न्यायालय ने माना कि जांच एजेंसियों द्वारा रिपोर्टों के प्रकटीकरण से पूर्ण प्रतिरक्षा एक पारदर्शी और जवाबदेह प्रणाली के विपरीत है, क्योंकि ये रिपोर्ट व्यक्तियों के जीवन, स्वतंत्रता और व्यवसायों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। • सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि राष्ट्रीय सुरक्षा के दावे हवा में नहीं किए जा सकते। ऐसे आरोपों के समर्थन में ठोस खुफिया सामग्री होनी चाहिए। न्यायालय ने माना कि भारत संघ द्वारा प्रस्तुत सामग्री का राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे से कोई संबंध नहीं है। पत्रकारिता की स्वतंत्रता • सुप्रीम कोर्ट ने मीडिया वन को सुरक्षा मंजूरी न देने की आलोचना की, क्योंकि चैनल संवैधानिक रूप से अपने विचार रखने का हकदार है, और मुक्त भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव पर चिंता व्यक्त की। कोर्ट ने स्पष्ट किया कि सरकारी नीति की आलोचना संविधान के अनुच्छेद 19(2) के तहत अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित करने का एक स्वीकार्य कारण नहीं है। निर्णय देखें

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
20	मृत्युदंड देते समय दंड कम करने वाले कारकों का महत्व।	**सुंदर @ सुंदरराजन बनाम राज्य पुलिस निरीक्षक द्वारा** **2023 आईएनएससी 264** **(21 मार्च 2023)** आर.पी.(सीआरएल.) संख्या 159-160/2013 द्वारा सीआरएल.ए. संख्या 300-301/2011 **न्यायाधीश:** मुख्य न्यायाधीश (डॉ.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति हिमा कोहली, न्यायमूर्ति पमिदिघनतम एस. नरसिम्हा **प्रश्न:** **(i)** क्या सर्वोच्च न्यायालय को अपहरण और हत्या (भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 364 ए और 302 के तहत) के लिए याचिकाकर्ता की सजा की समीक्षा करनी चाहिए? **(ii)** क्या याचिकाकर्ता को मृत्युदंड देना उचित है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 27 जुलाई 2009 को याचिकाकर्ता ने तमिलनाडु के कम्मापुरम में सात साल के बच्चे का अपहरण कर लिया। उसने पीड़ित की माँ को दो बार फ़ोन करके 5 लाख रुपए की फिरौती माँगी। 30 जुलाई 2009 को पुलिस ने याचिकाकर्ता के घर पर छापा मारा और उसे और एक सह-आरोपी को गिरफ़्तार कर लिया। याचिकाकर्ता ने बच्चे की गला घोंटकर हत्या करने और उसके शव को एक टैंक में फेंकने की बात कबूल की। याचिकाकर्ता के कबूलनामे के आधार पर पुलिस ने पीड़ित के शव को टैंक से बरामद किया। • कुड्डालोर की ट्रायल कोर्ट ने याचिकाकर्ता को बच्चे के अपहरण और हत्या का दोषी पाया। उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 364ए और 302 के तहत अपहरण और हत्या का दोषी ठहराया गया और मौत की सजा सुनाई गई। सह-अभियुक्त को सभी अपराधों से बरी कर दिया गया। • याचिकाकर्ता ने मद्रास उच्च न्यायालय में अपनी सजा के खिलाफ अपील की, लेकिन वह असफल रहा। उच्चतम न्यायालय में एक खंडपीठ (दो न्यायाधीशों) के समक्ष की गई अपील भी खारिज कर दी गई। दोनों अपीलीय न्यायालयों ने ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई सजा और मृत्युदंड के फैसले को बरकरार रखा। • मोहम्मद आरिफ उर्फ अशफाक बनाम रजिस्ट्रार, सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया (2014 आईएनएससी 590) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मद्देनजर मौत की सजा की समीक्षा की मांग करने वाली याचिकाओं पर खुली अदालत में सुनवाई की जरूरत थी। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि उसकी सजा की समीक्षा की जानी चाहिए क्योंकि इसमें न्यायिक त्रुटियां थीं। उन्होंने तर्क दिया कि भले ही उसका अपराध सिद्ध हो गया हो, लेकिन अदालतें उसे मौत की सजा देने में कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार करने में विफल रही हैं, और उसकी सजा कम की जानी चाहिए। तमिलनाडु राज्य ने आग्रह किया कि कथित त्रुटियां सुप्रीम कोर्ट के संकीर्ण समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थीं। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सुप्रीम कोर्ट ने अपहरण और हत्या के लिए याचिकाकर्ता की सजा को बरकरार रखा। हालांकि, उसने पाया कि न तो ट्रायल कोर्ट और न ही अपीलीय अदालतों ने याचिकाकर्ता को मौत की सजा देने में परिस्थितियों पर विचार किया, जो कि केवल दुर्लभतम मामलों में ही उचित था। सुप्रीम कोर्ट ने याचिकाकर्ता की सजा को बिना किसी छूट के कम से कम बीस साल के आजीवन कारावास में बदल दिया। न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** रिकॉर्ड में कोई त्रुटि स्पष्ट नहीं है • न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता अभियोजन पक्ष के मामले के बारे में उचित संदेह उत्पन्न करने में विफल रहा, जो मजबूत गवाहों की गवाही और दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित था। ट्रायल कोर्ट, हाई कोर्ट और उसके डिवीजन बेंच के समवर्ती निष्कर्षों से संतुष्ट होकर, सुप्रीम कोर्ट ने अपहरण और हत्या के लिए याचिकाकर्ता की सजा को बरकरार रखा। कम करने वाली और बढ़ाने वाली परिस्थितियों पर विचार • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि ट्रायल कोर्ट ने मृत्यु दंड देने से पहले याचिकाकर्ता को सजा पर सार्थक सुनवाई का अवसर नहीं दिया। न तो ट्रायल कोर्ट और न ही अपीलीय न्यायालयों ने याचिकाकर्ता के लिए सुधार या पुनर्वास की संभावना का सुझाव देने वाली परिस्थितियों पर विचार करने का वास्तविक प्रयास किया। इसके बजाय, दंड केवल अपराध की भीषण प्रकृति के आधार पर लगाया गया और पुष्टि की गई। सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ ने तर्क दिया था कि परिवार के इकलौते बेटे को निशाना बनाने का याचिकाकर्ता का निर्णय, जो परिवार की वंशावली को आगे बढ़ाता, एक गंभीर परिस्थिति थी। • अपने पिछले निर्णयों का हवाला देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि मृत्युदंड देने से पहले अपराधी की परिस्थितियों की जांच करना और उसके सुधार और पुनर्वास की संभावना को खारिज करना न्यायालय का कर्तव्य है। यह कर्तव्य तब भी पूरा किया जाना चाहिए जब आरोपी चुप हो । इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि बच्चे की हत्या, चाहे उसका लिंग कुछ भी हो, एक गंभीर परिस्थिति है और न्यायालयों को पितृसत्तात्मक मूल्य निर्णय नहीं देने चाहिए जो इस धारणा को बढ़ावा देते हैं कि केवल एक बेटा ही अपने वंश को आगे बढ़ाता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए गंभीर अपराध के बावजूद, मृत्युदंड केवल "दुर्लभतम मामलों" में ही दिया जाना चाहिए (बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य 1980 आईएनएससी 120) और वर्तमान मामले में यह उचित नहीं था । न्यायालय ने अपराध को कम करने वाले कारकों पर विचार किया, यह देखते हुए कि याचिकाकर्ता ने अपराध करते समय तेईस वर्ष की आयु प्राप्त की थी और उसका कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं था। इसने नोट किया कि वह 2009 से जेल में था, जहाँ उसका आचरण संतोषजनक रहा था, 2013 में भागने के प्रयास को छोड़कर। याचिकाकर्ता ने

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		जेल में रहते हुए फूड कैटरिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया था और वह सिस्टमिक हाइपरटेंशन से पीड़ित था । इन परिस्थितियों को देखते हुए, न्यायालय ने याचिकाकर्ता की सजा को बिना किसी छूट के बीस वर्ष से कम नहीं के आजीवन कारावास में बदल दिया। इसने नोट किया कि यद्यपि छूट के अधीन आजीवन कारावास की सजा आमतौर पर चौदह वर्ष तक होती है, लेकिन गंभीर अपराध के मद्देनजर यह छोटी सजा अपर्याप्त थी। निर्णय देखें
21	**भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों के लिए मुआवजे की राशि बढ़ाने की याचिका।**	**यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मेसर्स यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन** **2023 आईएनएससी 222** **(14 मार्च 2023)** क्यूरेटिव पीईटी(सी) संख्या 345-347/2010 आरपी(सी) संख्या 229/1989 और 623-624/1989 सीए संख्या 3187-3188/1988 और एसएलपी (सी) संख्या 13080/1988 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति अभय एस. ओका, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ और न्यायमूर्ति जितेंद्र के. माहेश्वरी **प्रश्न:** क्या भोपाल गैस त्रासदी आपदा के लिए यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित समझौता आदेश पर समझौता राशि बढ़ाने के लिए पुनर्विचार किया जा सकता है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 2-3 दिसंबर 1984 की रात को, भोपाल में यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड ("**यूनियन कार्बाइड इंडिया**") की कीटनाशक फैक्ट्री से घातक रासायनिक धुएं के रिसाव से लगभग 3,000 लोग मारे गए और 30,000 से अधिक अन्य गंभीर रूप से घायल हो गए। बड़ी संख्या में पीड़ितों को राहत और पारिश्रमिक प्रदान करने के लिए, भारत सरकार ने भोपाल गैस रिसाव आपदा (दावों का प्रसंस्करण) अधिनियम, 1985 ("**भोपाल दावा अधिनियम**") लागू किया। अधिनियम के तहत, केंद्र सरकार ने मुआवजे का दावा करने के हकदार हर व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने का विशेष अधिकार ग्रहण किया। भोपाल दावा अधिनियम ने केंद्र सरकार को दावों के लिए मामले दर्ज करने और पीड़ितों की ओर से यूनियन कार्बाइड इंडिया के साथ समझौता करने की भी अनुमति दी। यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन ("यूनियन कार्बाइड **यूएसए**") • भोपाल जिला न्यायालय और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में कार्यवाही के बाद, जिसमें दोनों न्यायालयों ने यूनियन कार्बाइड यूएसए द्वारा भुगतान किए जाने वाले अंतरिम मुआवजे की अलग-अलग राशि निर्धारित की, केंद्र सरकार और यूनियन कार्बाइड यूएसए दोनों ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। बाद में, यूनियन कार्बाइड यूएसए और केंद्र सरकार ने फरवरी 1989 में एक समझौता किया, जिसके तहत यूनियन कार्बाइड यूएसए ने भोपाल गैस आपदा से उत्पन्न सभी दावों और देनदारियों के लिए अंतिम निपटान के रूप में केंद्र सरकार को $470 मिलियन का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की। पीड़ितों को तत्काल राहत सुनिश्चित करने के लिए राशि की गणना की गई थी और इसे 31 मार्च 1989 तक जमा करना आवश्यक था। निपटान राशि के भुगतान पर, आपदा से संबंधित सभी दीवानी और आपराधिक मामले बंद हो जाने थे। सुप्रीम कोर्ट ने यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन बनाम भारत संघ (1989 INSC 60) ("**यूसीसी मामला**") में समझौते को मंजूरी दी। अपने फैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि पीड़ितों को मुआवजा प्रदान करने के लिए समझौता निधि अपर्याप्त होने की अप्रत्याशित स्थिति में, भारत संघ को कमी की पूर्ति करनी चाहिए। • वर्तमान मामले में, केंद्र सरकार ने 2010 में सुप्रीम कोर्ट में एक क्यूरेटिव याचिका दायर की थी, जिसमें मामले को फिर से खोलने और निपटान राशि पर पुनर्विचार करने की मांग की गई थी। केंद्र सरकार ने न्यायालय से अनुरोध किया कि मौतों और घायलों की संख्या से संबंधित नए तथ्यों और आंकड़ों के बाद यूनियन कार्बाइड यूएसए के खिलाफ निपटान राशि बढ़ाई जाए। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** ○ सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्मति से निर्णय पारित कर भारत संघ द्वारा दायर की गई उपचारात्मक याचिका को खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसा कोई कानूनी सिद्धांत नहीं है जो मुआवज़े में वृद्धि को उचित ठहराता हो। सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी विवेकाधीन शक्तियों का उपयोग करते हुए निपटान राशि बढ़ाने से भी इनकार कर दिया। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कौल द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** क्यूरेटिव याचिका की स्वीकार्यता • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्याय की घोर विफलता को सुधारने के लिए केवल बहुत सीमित आधारों पर ही सुधारात्मक याचिका दायर की जा सकती है, जिसे न्यायालय ने अपने पुनरीक्षण निर्णय के दौरान पहले मान्यता नहीं दी थी । • सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि क्यूरेटिव पिटीशन से यूसीसी मामले में उसके अंतिम फैसले की फिर से जांच होगी । कोर्ट ने कहा कि क्यूरेटिव पिटीशन में समीक्षा का दायरा बहुत सीमित है। कोर्ट ने माना कि क्यूरेटिव पिटीशन के जरिए सेटलमेंट बढ़ाना ऐसी पिटीशन के उद्देश्य से परे होगा । हालांकि, कोर्ट मामले के महत्व के कारण इसकी मेरिट के आधार पर पिटीशन की जांच करने के लिए सहमत हो गया । निपटान राशि की पर्याप्तता • भारत संघ ने कहा कि क्यूरेटिव याचिका इसलिए दायर की गई क्योंकि जिस समझौते पर सहमति बनी थी, वह गलत तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित था, जिसमें पीड़ितों की संख्या और आपदा के कारण उन्हें हुए मौद्रिक नुकसान की सीमा को कम करके आंका गया था । केंद्र सरकार ने कहा कि वह मुकदमा फिर से खोलना नहीं चाहती थी, बल्कि दावा की गई अतिरिक्त राशि के मद्देनजर 470 मिलियन डॉलर की अंतर्निहित समझौता राशि को बढ़ाना चाहती थी।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि केंद्र सरकार ने निजी संगठनों द्वारा पहले किए गए दावों का विरोध किया था, जिसमें निपटान निधि की राशि बढ़ाने की मांग की गई थी। न्यायालय ने यह भी पाया कि निपटान निधि से व्यक्तिगत मुआवज़ा राशि का वितरण बढ़ गया था क्योंकि अमेरिकी डॉलर के मुकाबले भारतीय रुपये की विनिमय दर में उतार-चढ़ाव के कारण केंद्र सरकार को उपलब्ध राशि में वृद्धि हुई थी। न्यायालय ने यह भी पाया कि भोपाल दावा अधिनियम के तहत कल्याण आयुक्त ने कानून के अनुसार दावों का निपटारा किया था और सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही पाया था कि प्रदान किया गया मुआवज़ा कानून के तहत पीड़ितों को उचित रूप से उपलब्ध मुआवज़े से अधिक था। इस प्रकार, न्यायालय के अनुसार, इन सभी टिप्पणियों ने इस तथ्य को पुष्ट किया कि पीड़ितों को मुआवज़ा देने के लिए निपटान राशि पर्याप्त थी । केंद्र सरकार की जिम्मेदारी • सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही भारत संघ को, एक कल्याणकारी राज्य होने के नाते, भविष्य के पीड़ितों की ओर से प्रासंगिक बीमा पॉलिसियाँ लेने का निर्देश दिया था, जो बाद में आपदा के कारण किसी भी विकलांगता के साथ पैदा हुए या विकसित हुए, ताकि मुआवजे में भविष्य में किसी भी कमी को पूरा किया जा सके। न्यायालय ने भारत संघ की आलोचना की और कहा कि यह घोर लापरवाही है क्योंकि यह ऐसी कोई भी बीमा पॉलिसी लेने में विफल रहा है । इसके अलावा, न्यायालय ने पाया कि पीड़ितों की देखभाल के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के पास अभी भी 50 करोड़ रुपये की राशि बकाया पड़ी है और आदेश दिया कि इस राशि का उपयोग अतिरिक्त खर्चों के मामले में भोपाल दावा अधिनियम के अनुसार किया जाए । अतिरिक्त अवलोकन • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि निपटान राशि पर बातचीत करते समय यूनियन कार्बाइड यूएसए द्वारा धोखाधड़ी किए जाने का कोई आरोप नहीं लगाया गया था और कानूनी तौर पर, किसी समझौते को केवल धोखाधड़ी के मामलों में ही रद्द किया जा सकता है । न्यायालय ने माना कि इस मामले में संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत न्याय करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करना उचित नहीं होगा। अंत में, न्यायालय ने नोट किया कि इस मामले में समापन प्रदान करना आवश्यक था क्योंकि अन्यथा, प्रत्येक निजी दावेदार अतिरिक्त मौद्रिक क्षति के लिए सबूत भी पेश करना शुरू कर सकता है और इससे अपरिहार्य न्यायिक देरी होगी जो लाभार्थियों के बजाय यूसीसी के पक्ष में होगी। निर्णय देखें
22	**भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) के सदस्यों की नियुक्ति की प्रक्रिया को चुनौती।**	**अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ विधि एवं न्याय मंत्रालय सचिव** **2023 आईएनएससी 190** **(2 मार्च 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 104/2015 **न्यायाधीश:** जस्टिस कुरियन एम. जोसेफ, जस्टिस अजय रस्तोगी, जस्टिस अनिरुद्ध बोस, जस्टिस हृषिकेश रॉय, जस्टिस चुडालायिल टी. रविकुमार **प्रश्न:** **क्या सर्वोच्च न्यायालय को भारत के चुनाव आयोग (" ईसीआई ")** की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए कोई निर्देश पारित करने की आवश्यकता है, यह देखते हुए कि संसद ने ईसीआई के सदस्यों की नियुक्ति प्रक्रिया को निर्दिष्ट करने के लिए अनुच्छेद 324 के तहत कोई कानून पारित नहीं किया है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • संविधान के अनुच्छेद 324 में कहा गया है कि चुनाव आयोग चुनावों की निगरानी और नियंत्रण करेगा। अनुच्छेद 324(2) में विशेष रूप से प्रावधान है कि राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति के लिए जिम्मेदार है, जो संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के अधीन है। संसद ने ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति के लिए कोई कानून नहीं बनाया है। ऐसे कानून के अभाव में, राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सिफारिशों के आधार पर नियुक्तियां करते रहे हैं। • सर्वोच्च न्यायालय में कई रिट याचिकाएँ दायर की गईं, जिनमें दावा किया गया कि ईसीआई के सदस्यों की नियुक्ति की मौजूदा प्रक्रिया असंवैधानिक है। याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि मौजूदा व्यवस्था के तहत, कार्यकारी सरकार के पास नियुक्तियों का अधिकार है, जो ईसीआई की स्वतंत्रता को खत्म कर रहा है। याचिकाकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय से ईसीआई नियुक्तियों के लिए एक स्वतंत्र प्रणाली की स्थापना के लिए निर्देश जारी करने का अनुरोध किया। भारत संघ ने जवाब में कहा कि ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति प्रक्रिया में न्यायिक हस्तक्षेप शक्तियों के पृथक्करण का उल्लंघन करेगा और वर्तमान नियुक्ति प्रक्रिया के तहत भी, ईसीआई अपनी स्वतंत्रता का प्रदर्शन करने में सक्षम रहा है क्योंकि स्वतंत्र, निष्पक्ष और समय पर चुनाव हुए हैं। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में फैसला सुनाया और संसद द्वारा कानून बनाए जाने तक ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति के लिए भारत के प्रधान मंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश से मिलकर एक चयन समिति गठित करने के दिशा-निर्देश निर्धारित किए। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि संविधान के निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 324 के तहत संसद द्वारा एक कानून की परिकल्पना की थी और कार्यपालिका को विशेष रूप से चुनाव आयोग में नियुक्तियां करने का इरादा नहीं था। सात दशक बीत गए हैं और कोई कानून नहीं बनाया गया है। एक स्पष्ट विधायी शून्य है और केवल कार्यकारी द्वारा ईसीआई में नियुक्तियां जारी रखने से लोगों और लोकतंत्र के मौलिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय के लिए ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति के लिए मानदंड निर्धारित करना उचित था जो संसद द्वारा कानून पारित किए जाने तक प्रभावी होंगे।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		निर्णय के कारण: संविधान निर्माताओं ने ईसीआई की स्वतंत्रता की रक्षा करने का प्रयास किया • संविधान निर्माताओं की मंशा जानने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने 1949 की संविधान सभा की बहस का हवाला दिया। डॉ. बीआर अंबेडकर ने बताया कि चुनाव मशीनरी को तत्कालीन सरकार के नियंत्रण में नहीं होना चाहिए और चुनाव आयोग नामक एक स्वतंत्र निकाय द्वारा चुनाव कराए जाने चाहिए। कोर्ट ने पाया कि यह स्पष्ट है कि संविधान सभा के सदस्य नहीं चाहते थे कि चुनाव आयोग की नियुक्ति केवल कार्यपालिका द्वारा की जाए। कोर्ट बेंच ने पाया कि अनुच्छेद 324(2) में 'संसद द्वारा बनाए जाने वाले किसी भी कानून के प्रावधानों के अधीन' वाक्यांश संविधान निर्माताओं की मंशा को दर्शाता है कि वे चुनाव आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना चाहते हैं लेकिन विशिष्ट नियुक्ति प्रक्रिया को संसद को कानून द्वारा निर्धारित करने के लिए छोड़ना चाहते हैं। • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संविधान निर्माताओं का स्पष्ट इरादा था कि संसद हस्तक्षेप करेगी और कानून बनाएगी, तथा कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति एक अस्थायी या अस्थायी व्यवस्था मात्र है, जिसे कानून द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, जो ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति के लिए कार्यपालिका की विशेष शक्ति को छीन लेगा। सात दशकों के बाद भी कानून का अभाव विधायी शून्यता पैदा करता है, जिसके कारण न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करना और दिशा-निर्देश प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। ईसीआई की स्वतंत्रता की रक्षा के अतिरिक्त कारण • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 324 ई.सी.आई. को राष्ट्रीय और राज्य चुनाव कराने की पूरी जिम्मेदारी देता है और इस कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक शक्तियां भी देता है। न्यायालय ने कहा कि चूंकि ई.सी.आई. देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण कार्य करता है, इसलिए ई.सी.आई. को स्वतंत्र, निष्पक्ष होना चाहिए और कानून के शासन का पालन करना चाहिए। न्यायालय ने कहा कि एक चुनाव आयोग जो स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित नहीं करता है, वह कानून के शासन के टूटने की गारंटी देता है। • सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि निर्वाचन आयोग को कार्यकारी नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए क्योंकि (i) सत्ता में रहने वाली पार्टी के पास स्वाभाविक रूप से सत्ता में बने रहने की प्रेरणा होती है और वह सत्ता बनाए रखने के लिए निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना चाह सकती है; (ii) यदि निर्वाचन आयोग अपनी शक्तियों का अनुचित या अवैध रूप से प्रयोग करता है तो इसका राजनीतिक दलों के भाग्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और राजनीतिक दलों के साथ असमानता अनुच्छेद 14 के तहत समानता के सिद्धांत का उल्लंघन होगा; और (iii) न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी की अलग राय ने पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए निर्वाचन आयोग के सदस्यों के वस्तुनिष्ठ चयन की आवश्यकता पर बल दिया। स्वतंत्र आयोग की संरचना • सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि केंद्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक की नियुक्ति एक समिति की सिफारिश पर की जाती है, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनके द्वारा नामित सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश होते हैं। इसी तरह, लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 के तहत लोकपाल के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति में, मुख्य न्यायाधीश एक चयन समिति के पांच सदस्यों में से एक होते हैं। न्यायालय ने ईसीआई सदस्यों की नियुक्ति के लिए चयन समिति के साथ आने के लिए गोस्वामी समिति की रिपोर्ट और दो सौ पचपनवें विधि आयोग की रिपोर्ट पर भी ध्यान दिया। न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी ने अपनी अलग राय में दुनिया भर में चुनाव कराने वाली संस्थाओं के प्रमुख की नियुक्ति का तुलनात्मक विश्लेषण किया और पाया कि अधिकांश न्यायक्षेत्रों में ऐसी नियुक्तियाँ एक परामर्श प्रक्रिया होती हैं, जिसमें सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दल दोनों के सदस्य शामिल होते हैं। शासन की निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में विपक्ष की उपस्थिति एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आवश्यक है, जो जवाबदेही सुनिश्चित करती है और विचार-विमर्श प्रक्रियाओं को बढ़ावा देती है। उन्होंने यह भी पाया कि कुछ न्यायक्षेत्रों में विधानमंडल के सदन के अध्यक्ष और देश की सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश जैसे संवैधानिक पदाधिकारी होते हैं, जो एक बहु-सदस्यीय समिति में होते हैं। अल्पावधि स्वतंत्रता को कमजोर करती है • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चुनाव आयुक्तों की सेवा शर्तें और कार्य संचालन अधिनियम, 1991 की धारा 4 के अनुसार, चुनाव आयुक्त छह वर्ष के कार्यकाल के लिए पात्र है, बशर्ते कि अधिकारी को पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर अपना पद छोड़ना होगा। न्यायालय ने कहा कि केंद्र सरकार 2004 से लगातार ऐसे सदस्यों को चुन रही है जो पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के करीब हैं । न्यायालय ने कहा कि छह वर्ष से कम कार्यकाल की शर्त अपवाद होनी चाहिए, न कि आदर्श। न्यायालय ने पाया कि कम कार्यकाल चुनाव आयोग की स्वतंत्रता को कमजोर करता है और स्वतंत्रता की नीति को पराजित करता है । अतिरिक्त अवलोकन • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मुख्य चुनाव आयुक्त (सीईसी) को हटाने के आधार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान ही हैं, अर्थात सिद्ध दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर संसद के दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव द्वारा हटाया जाना। हालांकि, मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश पर चुनाव आयुक्त को हटाया जा सकता है । न्यायालय ने माना कि चुनाव आयुक्तों के लिए हटाने की प्रक्रिया को मुख्य चुनाव आयुक्त के समान बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी ने अपनी अलग राय में सुझाव दिया कि चुनाव आयुक्तों को हटाने का आधार मुख्य चुनाव आयुक्त के समान ही होना चाहिए ताकि कार्यालय की निष्पक्षता और स्वतंत्रता सुनिश्चित हो सके (धारा 125 जे. रस्तोगी)। • याचिकाकर्ताओं ने सुप्रीम कोर्ट से यह निर्देश मांगा कि चुनाव आयोग को एक स्थायी सचिवालय प्रदान किया जाए और इसके खर्च भारत की संचित निधि से वसूले जाएं। कोर्ट ने कहा कि यह नीति का मामला है जिसे कानून द्वारा प्रदान किया जा सकता है (धारा 239)। निर्णय देखें

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
23	व्यभिचार साबित करने के लिए बच्चे के डीएनए परीक्षण को चुनौती।	**अपर्णा अजिंक्य फिरोदिया बनाम अजिंक्य अरुण फिरोदिया** **2023 आईएनएससी 146** **(20 फरवरी 2023)** सी.ए. नं. 1308/2023 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति वी. रामसुब्रमण्यम, न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना **प्रश्न:** क्या तलाक की कार्यवाही में व्यभिचार का आधार साबित करने के लिए बच्चे का डीएनए परीक्षण कराया जा सकता है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • पति (प्रतिवादी) ने तलाक की कार्यवाही के दौरान अपनी पत्नी से शादी के दौरान जन्मे दूसरे बच्चे के पितृत्व का पता लगाने के लिए डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड टेस्ट ("डीएनए टेस्ट") के माध्यम से आवेदन दायर किया। फैमिली कोर्ट ने इसे अनुमति दे दी और बॉम्बे हाई कोर्ट ने भी इस फैसले की पुष्टि की। • पत्नी (याचिकाकर्ता) ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि इस मामले में डीएनए परीक्षण की अनुमति देना बच्चे के सर्वोत्तम हित में नहीं है क्योंकि डीएनए परीक्षण की मांग करने का अंतिम उद्देश्य बच्चे के माता-पिता का निर्धारण करना नहीं है, बल्कि विवाह के दौरान व्यभिचार (विवाहेतर संबंध) के आरोपों को साबित करना है, जिसे किसी अन्य साक्ष्य को पेश करके साबित किया जा सकता है। न्यायालय ने यह भी माना कि बच्चों को यह अधिकार है कि वे न्यायालय के समक्ष अपनी वैधता पर बेवजह सवाल न उठाएँ। यह उनकी निजता के अधिकार का एक अनिवार्य गुण है। न्यायालय के निर्णय को न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना ने लिखा और न्यायमूर्ति वी. रामसुब्रमण्यन ने हस्ताक्षर किए। न्यायमूर्ति वी. रामसुब्रमण्यन ने एक अलग सहमति राय भी लिखी। **निर्णय के कारण:** बच्चों का डीएनए परीक्षण: सिद्धांत • न्यायमूर्ति नागरत्ना ने उन सिद्धांतों का सारांश दिया कि कब न्यायालय को नाबालिग पर डीएनए परीक्षण का निर्देश देना चाहिए: • वैवाहिक विवादों के मामले में बच्चों का डीएनए परीक्षण नियमित रूप से नहीं किया जाएगा, जब तक कि बेवफाई साबित करने का कोई अन्य तरीका न हो। • भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 112 में प्रावधान है कि वैध विवाह के दौरान पैदा हुआ बच्चा पति का वैध बच्चा माना जाता है। वैध विवाह के दौरान पैदा हुए बच्चे का डीएनए परीक्षण तभी निर्देशित किया जा सकता है जब पति यह साबित कर सके कि उसकी पत्नी तक पहुँच नहीं थी। • कोई भी डीएनए परीक्षण तब उचित नहीं है जब बच्चे का पितृत्व सीधे तौर पर मुद्दा न हो, बल्कि कार्यवाही में केवल सहायक हो। • व्यभिचार साबित करने के लिए डीएनए परीक्षण का निर्देश देते समय, न्यायालय को व्यभिचार से पैदा हुए बच्चों पर पड़ने वाले परिणामों पर विचार करना चाहिए, जिसमें विरासत से संबंधित परिणाम और सामाजिक कलंक भी शामिल है। बच्चों की निजता का अधिकार • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक बच्चे का निजता का अधिकार एक वयस्क के समान नहीं है। हालाँकि, बच्चों की अपनी पहचान होती है, और संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार सम्मेलन का अनुच्छेद 8 बच्चों को अपनी पहचान बनाए रखने का स्पष्ट अधिकार प्रदान करता है। न्यायालय ने कहा कि किसी की आनुवंशिक जानकारी व्यक्तिगत और अंतरंग होती है और बच्चों पर लागू निजता के अधिकार द्वारा संरक्षित होती है। न्यायालय ने माना कि उनके माता-पिता का विवरण एक बच्चे की पहचान का एक आवश्यक गुण है और इसलिए उन्हें अदालतों के समक्ष बेमतलब चुनौती नहीं दी जानी चाहिए। बच्चे का सर्वोत्तम हित • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि बच्चों से जुड़े कार्यों में बच्चे के हितों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। न्यायालय ने कहा कि डीएनए परीक्षण के माध्यम से बच्चे की नाजायजता का पता चलने से न केवल बच्चे के मन में भ्रम की स्थिति पैदा हो सकती है, बल्कि यह पता लगाने की इच्छा भी पैदा हो सकती है कि उसका असली पिता कौन है। न्यायालय ने कहा कि अपने पिता के बारे में न जानना बच्चे में मानसिक आघात पैदा करता है, और इससे बच्चे और माता-पिता के बीच कड़वाहट पैदा हो सकती है। इसके अलावा, इससे बच्चे और माँ दोनों के प्रति बहुत अधिक सामाजिक कलंक भी पैदा होता है। इसलिए, न्यायालय ने माना कि माता-पिता बच्चे के सर्वोत्तम हित में बच्चे का डीएनए परीक्षण न करवाने का विकल्प चुन सकते हैं। • न्यायमूर्ति वी. रामसुब्रमण्यन ने अपनी अलग राय में कहा कि डीएनए परीक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, इसका निर्णय बच्चे के दृष्टिकोण से लिया जाना चाहिए, न कि माता-पिता के दृष्टिकोण से। बच्चे को व्यभिचार (विवाह से बाहर) संबंधों को साबित करने के साधन के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। पत्नी के व्यभिचारी आचरण को प्रतिवादी द्वारा अन्य साक्ष्य पेश करके साबित किया जा सकता है, लेकिन बच्चे की पहचान से समझौता नहीं किया जाना चाहिए। प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता • जे. रामसुब्रमण्यन ने अपनी अलग राय में भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के तहत दृष्टांत (एच) पर ध्यान दिया। इसमें कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इनकार करता है जिसका उत्तर देने के लिए वह कानून द्वारा बाध्य नहीं है, तो न्यायालय यह मान सकता है कि यदि उत्तर दिया जाता है, तो वह उसके लिए प्रतिकूल होगा। जे. रामसुब्रमण्यन ने माना कि यदि पत्नी अपने लाभ के लिए बच्चे के डीएनए परीक्षण के बारे में आपत्ति उठाती है, तो धारा 114, दृष्टांत (एच) के तहत उसके खिलाफ़ अनुमान लगाया जा सकता है। हालाँकि, यदि पत्नी अपने बच्चे के लाभ के लिए

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		माँ की हैसियत से बच्चे के डीएनए परीक्षण के बारे में आपत्ति उठाती है, तो उक्त प्रावधान के तहत उसके खिलाफ़ कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। निर्णय देखें
24	अधिवक्ता के रूप में अभ्यास करने के लिए योग्यता परीक्षा निर्धारित करने की भारतीय बार काउंसिल की शक्ति।	**बार काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम बोनी एफओआई लॉ कॉलेज** **2023 आईएनएससी 116** **(10 फरवरी 2023)** सीए नं. 969/2023 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति संजय के. कौल, न्यायमूर्ति संजीव खन्ना, न्यायमूर्ति अभय एस. ओका, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ, न्यायमूर्ति जितेंद्र के. माहेश्वरी **प्रश्न:** क्या बार काउंसिल ऑफ इंडिया एक अधिवक्ता के रूप में प्रैक्टिस करने के लिए एक आवश्यक शर्त के रूप में नामांकन-पूर्व या नामांकन-पश्चात परीक्षा (जैसे अखिल भारतीय बार परीक्षा) निर्धारित कर सकती है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • बोनी फोई लॉ कॉलेज ("**कॉलेज**") ने लॉ डिग्री कोर्स की पेशकश करने के लिए बार काउंसिल ऑफ इंडिया ("**बीसीआई**") में आवेदन किया। बीसीआई और कॉलेज के बीच विवाद उत्पन्न हो गया। 2009 में, सुप्रीम कोर्ट ने एक निरीक्षण दल नियुक्त किया जिसने कॉलेज का दौरा किया और कॉलेज के बुनियादी ढांचे और कामकाज में कमियों को इंगित करते हुए एक रिपोर्ट दी। • इस मामले के दौरान, भारत के विभिन्न विधि महाविद्यालयों में प्रदान की जाने वाली विधिक शिक्षा के घटते मानकों का एक बड़ा सवाल सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। न्यायालय ने विधि महाविद्यालयों की संबद्धता और मान्यता से संबंधित मुद्दों की जांच करने तथा सुधार के क्षेत्रों की पहचान करने के लिए तीन सदस्यीय समिति नियुक्त की। इस समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर 2010 में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों से मिलकर एक विशेष रूप से गठित स्वतंत्र निकाय द्वारा पहली अखिल भारतीय बार परीक्षा ("**एआईबीई**") आयोजित की गई। • सुनवाई के दौरान, वी. सुदीर बनाम बार काउंसिल ऑफ इंडिया (1999 आईएनएससी 105) ("**वी. सुदीर**") का मामला पुनर्विचार के लिए आया, वी. सुदीर में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि बीसीआई के पास अधिवक्ता अधिनियम के तहत वकील के रूप में अभ्यास करने के लिए आवश्यक शर्त के रूप में पूर्व-नामांकन प्रशिक्षण या परीक्षा के लिए नियम निर्धारित करने की कोई शक्ति नहीं है। • वर्ष 2016 में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा था कि वर्तमान मामले में उठाए गए प्रश्न सामान्य रूप से कानूनी पेशे को प्रभावित करने वाले काफी महत्वपूर्ण हैं तथा इनका उत्तर संविधान पीठ द्वारा अधिकारपूर्वक दिया जाना आवश्यक है। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** ○ सुप्रीम कोर्ट ने माना कि बीसीआई के पास अधिवक्ता के रूप में अभ्यास करने के लिए आवश्यक शर्त के रूप में अखिल भारतीय बार परीक्षा जैसी नामांकन के बाद की परीक्षा निर्धारित करने का अधिकार है। कोर्ट ने माना कि बीसीआई के पास अधिवक्ता के रूप में अभ्यास करने के लिए एक शर्त के रूप में नामांकन-पूर्व परीक्षा या आवश्यक नामांकन-पूर्व प्रशिक्षण निर्धारित करने का भी अधिकार है। कोर्ट ने घोषित किया कि वी. सुदीर में दिया गया निर्णय गलत था। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजय के. कौल द्वारा लिखा गया था । **निर्णय के कारण:** अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के तहत बीसीआई की शक्तियों का दायरा • सर्वोच्च न्यायालय ने अधिवक्ता अधिनियम, 1961 ("**अधिवक्ता अधिनियम**") की धारा 7 का संज्ञान लिया जो बीसीआई के कार्यों का प्रावधान करती है। विशेष रूप से, धारा 7(1)(एच) कानूनी शिक्षा को बढ़ावा देने और भारत में विश्वविद्यालयों और राज्य बार काउंसिलों के परामर्श से ऐसी शिक्षा के लिए मानक निर्धारित करने का प्रावधान करती है। न्यायालय ने यह भी नोट किया कि अधिवक्ता अधिनियम की धारा 49 नियम बनाने की बीसीआई की सामान्य शक्तियों से संबंधित है और धारा 49(1)(एएच) और (एजी) विशेष रूप से उन शर्तों से संबंधित है जिनके अधीन एक अधिवक्ता को अभ्यास करने का अधिकार होगा। न्यायालय ने माना कि अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7 और धारा 49 पर विचार करते हुए, बीसीआई के पास अधिवक्ताओं के नामांकन के लिए नामांकन-पूर्व प्रशिक्षण पाठ्यक्रम या परीक्षा आयोजित करने का अधिकार है क्योंकि बीसीआई सीधे उन व्यक्तियों के मानक से संबंधित है जो पेशे के रूप में कानून का अभ्यास करने के लिए लाइसेंस प्राप्त करना चाहते हैं न्यायालय ने घोषणा की कि अखिल भारतीय बार परीक्षा किस चरण में आयोजित की जाएगी, अर्थात नामांकन से पूर्व या नामांकन के बाद, यह निर्णय लेना बी.सी.आई. पर छोड़ दिया गया है। वकीलों के गुणवत्ता नियंत्रण की आवश्यकता • सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वकीलों की गुणवत्ता न्याय प्रशासन और न्याय तक पहुँच का एक महत्वपूर्ण पहलू है । न्यायालय ने माना कि पेशे में प्रवेश करने वाले वकीलों का गुणवत्ता नियंत्रण समय की मांग है और नामांकन के लिए अखिल भारतीय बार परीक्षा का प्रावधान इस उद्देश्य की पूर्ति करता है । एआईबीई के संचालन के संबंध में बीसीआई को सुझाव • सर्वोच्च न्यायालय ने एआईबीई की वैधता को बरकरार रखते हुए परीक्षा के संचालन के संबंध में बीसीआई को कुछ सुझाव दिए:

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		I. वर्ष में दो बार एआईबीई आयोजित करने की अनुसूची का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए क्योंकि अन्यथा कानून की डिग्री वाले छात्र अभ्यास करने में असमर्थ होंगे । II. कानून के पाठ्यक्रम के अंतिम सेमेस्टर में छात्रों को एआईबीई लेने की अनुमति दी जा सकती है और एआईबीई का परिणाम सभी कॉलेज परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के अधीन होगा । III. कोई भी विधि स्नातक जिसने अभी तक एआईबीई के लिए उपस्थित नहीं हुआ है या अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के तहत नामांकित नहीं हुआ है, उसे अदालतों के समक्ष दलील देने के अलावा कानूनी पेशे से संबंधित सभी कार्य करने में सक्षम होना चाहिए । IV. जो वकील कुछ वर्षों से गैर-कानूनी नौकरियों में हैं, उन्हें कानूनी पेशे में पुनः शामिल होने के लिए AIBE की पुनः अर्हता प्राप्त करनी चाहिए । V. विभिन्न राज्य बार काउंसिल नामांकन के लिए अलग-अलग शुल्क ले रहे हैं। बीसीआई को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एक समान पैटर्न का पालन किया जाए और पेशे में शामिल होने वाले युवा छात्रों की दहलीज पर शुल्क दमनकारी न हो । निर्णय देखें
25	**व्यभिचार के अपराध को असंवैधानिक घोषित किए जाने के बाद सशस्त्र बलों पर भी इस अपराध के लागू होने के संबंध में स्पष्टीकरण।**	**जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ सचिव** **2023 आईएनएससी 87** **(31 जनवरी 2023)** एमए 2204/2020 इन WP(Crl.) नंबर 194/2017 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति कुट्टियिल एम. जोसेफ, न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी, न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय, न्यायमूर्ति चुडालायिल टी. रविकुमार **प्रश्न:** क्या जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (“**2018 जोसेफ शाइन मामला”)** में सुप्रीम कोर्ट का फैसला , जहां न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (“**आईपीसी**”) की धारा 497 के तहत व्यभिचार के अपराध को असंवैधानिक करार दिया था, सशस्त्र बलों में व्यक्तियों पर भी लागू होता है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • भारत संघ ने इस बात पर स्पष्टीकरण मांगा है कि क्या 2018 के जोसेफ शाइन मामले में सुप्रीम कोर्ट का फैसला सशस्त्र बलों के सदस्यों पर लागू होता है जो सेना अधिनियम, 1950, वायु सेना अधिनियम, 1950 और नौसेना अधिनियम, 1957 द्वारा शासित हैं। इन तीनों अधिनियमों में अनुशासन के उल्लंघन के लिए सशस्त्र बलों में व्यक्तियों को दंडित करने का प्रावधान था। इस तरह के उल्लंघनों में, अन्य बातों के अलावा, अनैतिक या व्यभिचारी कृत्य शामिल थे। चूंकि 2018 के जोसेफ शाइन मामले ने आईपीसी की धारा 497 के तहत व्यभिचार को असंवैधानिक घोषित किया था, इसलिए भारत संघ ने यह स्पष्ट करने के लिए एक याचिका दायर की कि क्या उस मामले में फैसला उन सशस्त्र बलों पर भी लागू होगा जो इन विशेष कानूनों के तहत शासित हैं और क्या यह फैसला सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम ○ २०१८ के जोसेफ शाइन मामले में , सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने फैसला दिया कि आईपीसी की धारा ४९७ असंवैधानिक है क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद १४, १५ और २१ का उल्लंघन करती है और एक पुरुष और एक महिला के बीच अनुचित रूप से भेदभाव करती है। आईपीसी की धारा ४९७ ने व्यभिचार को इस आधार पर परिभाषित किया है कि यदि कोई व्यक्ति (एक पुरुष) किसी अन्य पुरुष की पत्नी के साथ उस पुरुष की सहमति के बिना सहमति से यौन संबंध रखता है, तो ऐसा व्यक्ति व्यभिचार करने के लिए उत्तरदायी होगा। हालांकि, ऐसे मामलों में पत्नी को दंडित नहीं किया जा सकता था। इसी मामले में न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता ("**सीआरपीसी**") की धारा १९८(२) को भी रद्द कर दिया क्योंकि यह केवल व्यभिचार करने वाली महिला के पति को एक पीड़ित व्यक्ति के रूप में मानता था जो शिकायत दर्ज करा सकता था न्यायालय ने कहा कि यह वैधानिक प्रावधान पुरातन दृष्टिकोण को दर्शाता है, जहां पत्नियों को पुरुषों की “संपत्ति” माना जाता था। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्मति से माना कि 2018 के जोसेफ शाइन मामले में उसके निर्णय में इस बात पर विचार नहीं किया गया कि क्या आईपीसी की धारा 497 को अमान्य करना सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम या नौसेना अधिनियम पर लागू होता है जो सशस्त्र बलों को नियंत्रित करता है। इस प्रकार, आईपीसी के तहत व्यभिचार को समाप्त करने से सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम या नौसेना अधिनियम के तहत सशस्त्र बलों के सदस्यों के खिलाफ कार्यवाही प्रभावित नहीं हुई। न्यायमूर्ति जोसेफ ने न्यायालय का निर्णय लिखा। **निर्णय के कारण:** • संविधान के अनुच्छेद 33 में कहा गया है कि संसद के पास सशस्त्र बलों पर मौलिक अधिकारों की प्रयोज्यता को संशोधित करने के लिए कानून बनाने की शक्ति है। भारत संघ ने प्रस्तुत किया कि सशस्त्र बल एक अलग वर्ग हैं और इस प्रकार, 2018 जोसेफ शाइन मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय उन पर लागू नहीं होगा क्योंकि सेना अधिनियम, वायु सेना अधिनियम और नौसेना अधिनियम अलग-अलग संहिताएँ हैं जो IPC से स्वतंत्र रूप से संचालित होती हैं। भारत संघ ने प्रस्तुत किया कि जहाँ सशस्त्र बलों के किसी सदस्य पर अनुचित आचरण का आरोप लगाया गया था और इसमें व्यभिचार शामिल था, तो 2018 जोसेफ शाइन मामले में दिए गए निर्णय को सशस्त्र बलों के अधिकारियों को ऐसे सदस्य के खिलाफ कार्रवाई करने से नहीं रोकना चाहिए।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		• सुप्रीम कोर्ट ने माना कि 2018 के जोसेफ शाइन मामले में उसका फैसला केवल आईपीसी की धारा 497 और सीआरपीसी की धारा 198(2) की संवैधानिक वैधता से संबंधित था। उस मामले में कोर्ट ने आर्मी एक्ट, एयर फोर्स एक्ट या नेवी एक्ट में व्यभिचार को दंडित करने वाले प्रावधानों की वैधता पर विचार नहीं किया। इसलिए, कोर्ट ने माना कि 2018 के जोसेफ शाइन मामले में दिए गए फैसले का आर्मी एक्ट, एयर फोर्स एक्ट या नेवी एक्ट के तहत सशस्त्र बलों के सदस्यों के खिलाफ कार्यवाही के संचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निर्णय देखें
26	इच्छामृत्यु पर दिशा-निर्देशों में संशोधन और 'उन्नत चिकित्सा निर्देशों' का क्रियान्वयन।	**कॉमन कॉज (एक पंजीकृत सोसायटी) निदेशक श्री एच.डी. शौरी बनाम भारत संघ (ए) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय सचिव** **2023 आईएनएससी 77** **(24 जनवरी 2023)** एमए 1699/2019 डब्ल्यूपी (सी) संख्या 215/2005 में **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति कुट्टियिलएम. जोसेफ, न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी, न्यायमूर्ति अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय, न्यायमूर्ति चुडालायिल टी. रविकुमार **प्रश्न:** क्या कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसायटी) बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असाध्य रूप से बीमार रोगियों के लिए जारी इच्छामृत्यु संबंधी दिशा-निर्देशों को संशोधित करने की आवश्यकता है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 9 मार्च 2018 को, सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) ने कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम भारत संघ, (**"कॉमन कॉज"**) में सम्मान के साथ मरने के अधिकार को बरकरार रखा और एक 'एडवांस मेडिकल डायरेक्टिव' (**"एएमडी"**) या 'लिविंग विल' को कानूनी मान्यता दी। एएमडी व्यक्तियों को जीवन-रक्षक उपचार को वापस लेने के बारे में अपनी इच्छाओं को रेखांकित करने की अनुमति देता है, अगर वे गंभीर रूप से बीमार हो जाते हैं या लगातार वनस्पति अवस्था में होते हैं और अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं, जिससे उन्हें अपने लंबे समय से चले आ रहे दुख को समाप्त करने की अनुमति मिलती है। न्यायालय ने एएमडी बनाने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए, जिसमें शामिल है कि कौन अग्रिम निर्देश निष्पादित कर सकता है, इसमें क्या होना चाहिए, इसे कैसे रिकॉर्ड और संरक्षित किया जाना चाहिए, और इसे कब और किसके द्वारा प्रभावी किया जा सकता है। ○ इसके बाद, इंडियन सोसाइटी ऑफ क्रिटिकल केयर मेडिसिन ने कॉमन कॉज फैसले में कुछ दिशा-निर्देशों में कुछ संशोधन और स्पष्टीकरण की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया। उन्होंने तर्क दिया कि न्यायालय के दिशा-निर्देशों के कार्यान्वयन में कई बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) ने 9 मार्च 2018 के कॉमन कॉज फैसले को संशोधित किया और एएमडी को निष्पादित करने की प्रक्रिया को सरल बनाया, जैसे कि न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी की भूमिका को काफी कम करना। इसका उद्देश्य निर्देशों के कार्यान्वयन के दौरान आने वाली व्यावहारिक चुनौतियों का समाधान करने के लिए प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करना था। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जोसेफ द्वारा लिखा गया था। **निर्णय के कारण:** **प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट (“जेएमएफसी”)** की भूमिका कम कर दी गई • सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक मजिस्ट्रेट तक पहुँचने में एक सामान्य व्यक्ति को होने वाली कठिनाइयों को पहचानते हुए JMFC की भागीदारी को कम कर दिया। पहले, दिशा-निर्देश में अनिवार्य था कि AMD पर दो सत्यापनकर्ता गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिए और JMFC द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित किया जाना चाहिए। हालाँकि, न्यायालय ने इस आवश्यकता को संशोधित किया, जिससे JMFC की भूमिका समाप्त हो गई। अब, AMD पर दो सत्यापनकर्ता गवाहों की उपस्थिति में और एक नोटरी या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष हस्ताक्षर किए जा सकते हैं, जो पुष्टि कर सकते हैं कि दस्तावेज़ स्वेच्छा से निष्पादित किया गया था। • इसके अतिरिक्त, पहले के दिशा-निर्देशों में जेएमएफसी को निष्पादक के परिवार के सदस्यों को एएमडी के निष्पादन के बारे में सूचित करने का काम सौंपा गया था। इस दिशा-निर्देश को संशोधित किया गया है, जिससे निष्पादक पर यह जिम्मेदारी आ गई है कि वह अपने परिवार के सदस्यों और पारिवारिक चिकित्सक को सूचित करे, और उन्हें एएमडी की एक प्रति प्रदान करे। • पहले, जब इलाज करने वाले चिकित्सक को एएमडी के बारे में बताया जाता था, तो उन्हें जेएमएफसी से इसकी वास्तविकता की पुष्टि करनी होती थी। अब, इसकी वास्तविकता को मौजूदा डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड या दस्तावेज़ के संरक्षक से सत्यापित किया जाना चाहिए। • सर्वोच्च न्यायालय ने जेएमएफसी की भूमिका से संबंधित कुछ दिशा-निर्देशों को भी हटा दिया, जैसे कि जेएमएफसी का अपने कार्यालय में अग्रिम निर्देश की एक प्रति सुरक्षित रखने का कर्तव्य, उसे संरक्षित करने के लिए क्षेत्राधिकार वाले जिला न्यायालय की रजिस्ट्री को भेजना, तथा जेएमएफसी का एएमडी की एक प्रति पारिवारिक चिकित्सक को सौंपना। मेडिकल बोर्ड का गठन • पहले के दिशा-निर्देशों के अनुसार उपचार करने वाले चिकित्सक को यह निर्धारित करना होता था कि क्या ए.एम.डी. वास्तविक है और क्या रोगी के ठीक होने की कोई उम्मीद है, उसके बाद ही वे उपचार बंद करने का सुझाव देते थे। इसके बाद अस्पताल

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		को एक मेडिकल बोर्ड बनाना चाहिए जिसमें उपचार विभाग के प्रमुख और सामान्य चिकित्सा, कार्डियोलॉजी, नेफ्रोलॉजी, न्यूरोलॉजी, ऑन्कोलॉजी या मनोचिकित्सा में बीस साल से अधिक का अनुभव रखने वाले कम से कम तीन विशेषज्ञ हों, साथ ही उन्हें गहन देखभाल में भी अनुभव हो। यदि मेडिकल बोर्ड यह प्रमाणित करता है कि ए.एम.डी. में दिए गए निर्देशों का पालन किया जाना चाहिए, तो जिला कलेक्टर को दूसरा मेडिकल बोर्ड बनाने का काम सौंपा जाता है, जिसमें जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी शामिल होंगे। दूसरे मेडिकल बोर्ड के लिए चुने गए तीन नए डॉक्टरों पर भी यही अनुभव संबंधी आवश्यकताएं लागू होंगी। रोगी को देखने के बाद, यह मेडिकल बोर्ड तय करेगा कि वे अस्पताल के मेडिकल बोर्ड के निर्णय से सहमत हैं या नहीं। • देश के कई क्षेत्रों में बीस साल से ज़्यादा अनुभव वाले डॉक्टरों को खोजने की चुनौती को समझते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने बोर्ड के सदस्यों के लिए योग्यता की आवश्यकता को आसान बना दिया है। दिशा-निर्देशों को संशोधित करके यह निर्धारित किया गया है कि डॉक्टरों को अब नाम बदलकर 'प्राथमिक' और 'माध्यमिक' मेडिकल बोर्ड में काम करने के लिए केवल न्यूनतम पाँच साल का अनुभव चाहिए। माध्यमिक बोर्ड में अब मुख्य चिकित्सा अधिकारी शामिल नहीं होंगे। इसके बजाय, मुख्य चिकित्सा अधिकारी एक पंजीकृत चिकित्सक को नामित करेंगे। दोनों बोर्डों के लिए बोर्ड सदस्यों की न्यूनतम संख्या घटाकर तीन कर दी गई है। इसके अलावा, न्यायालय ने प्रत्येक मेडिकल बोर्ड पर निर्णय लेने के लिए अड़तालीस घंटे की समय सीमा तय की है। निर्णय देखें
27	**निजी (गैर-राज्य) पक्षों को अन्य व्यक्तियों के अनुच्छेद 19 और 21 के अधिकारों का सम्मान करना आवश्यक है।**	**कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सरकार गृह सचिव** **2023 आईएनएससी 4** **(3 जनवरी 2023)** डब्ल्यू.पी.(सीआरएल.) संख्या 113/2016 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति सैयद ए. नजीर, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, न्यायमूर्ति अज्जिकुट्टीरा एस. बोपन्ना, न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमण्यम, न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना **प्रश्न:** **(i)** क्या संविधान के अनुच्छेद 19(2) में उल्लिखित आधार ही एकमात्र कारण हैं जिनके लिए संविधान के तहत मुक्त भाषण को प्रतिबंधित किया जा सकता है? **(ii)** क्या संविधान के अनुच्छेद 19 या 21 के तहत मौलिक अधिकारों को गैर-राज्य अभिनेताओं (जैसे, अन्य नागरिक या निजी कंपनियां) के खिलाफ लागू किया जा सकता है? **(iii)** क्या राज्य गैर-राज्य अभिनेताओं द्वारा उल्लंघन किए जाने पर नागरिक के अनुच्छेद 21 के अधिकार की रक्षा करने के लिए बाध्य है? **(iv)** क्या राज्य के मामलों के बारे में किसी मंत्री द्वारा दिए गए बयान को सरकार का माना जा सकता है? **(v)** क्या किसी मंत्री द्वारा किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों के साथ असंगत बयान को नागरिक के अधिकारों का उल्लंघन माना जा सकता है? **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 29 जुलाई 2016 को, एक महिला और उसकी नाबालिग बेटी के साथ कथित तौर पर राष्ट्रीय राजमार्ग 91 पर सामूहिक बलात्कार किया गया था। पीड़ितों ने निष्पक्ष जांच की उम्मीद में, उत्तर प्रदेश से मुकदमे को दिल्ली स्थानांतरित करने की मांग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। पीड़ितों ने उत्तर प्रदेश कैबिनेट में शहरी विकास मंत्री श्री आज़म खान के खिलाफ भी कार्रवाई की मांग की, जिन्होंने इस घटना को राज्य सरकार को बदनाम करने के लिए रची गई "विपक्षी साजिश" करार दिया था। 5 अक्टूबर 2017 को, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस याचिका में विचार के लिए उठने वाले सवालों को एक संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) को भेज दिया। • 10 नवंबर 2017 को तीन जजों की बेंच ने इस याचिका को केरल की एक अपील के साथ जोड़ दिया जिसमें इसी तरह के मुद्दे उठाए गए थे। इस अपील में केरल सरकार द्वारा अपने बिजली मंत्री श्री एम.एम. मणि द्वारा महिलाओं के बारे में दिए गए अपमानजनक बयानों पर कार्रवाई न करने को चुनौती दी गई थी। • 24 अक्टूबर 2019 को संविधान पीठ ने उपर्युक्त पांच प्रश्नों को विचारार्थ तैयार किया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अनुच्छेद 19(2) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को प्रतिबंधित करने के लिए बताए गए आधार व्यापक थे, और अनुच्छेद 19(2) में न पाए जाने वाले कारणों से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 19 और 21 को गैर-राज्य अभिनेताओं (जैसे, अन्य नागरिक या निजी कंपनियाँ) के विरुद्ध लागू किया जा सकता है। इसने यह भी पाया कि अनुच्छेद 21 के तहत किसी व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का सकारात्मक कर्तव्य है, यहाँ तक कि गैर-राज्य अभिनेताओं के विरुद्ध भी। • न्यायालय ने माना कि राज्य के मामलों के बारे में किसी मंत्री द्वारा दिया गया बयान सरकार से संबंधित नहीं हो सकता। न्यायालय ने यह भी माना कि किसी मंत्री द्वारा दिया गया मात्र एक बयान जो किसी व्यक्ति या नागरिक के मौलिक अधिकारों को कमजोर करता है, उस पर तब तक कार्रवाई नहीं की जा सकती जब तक कि उसके कारण सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा कोई ऐसा कार्य या चूक न हुई हो जिससे उस व्यक्ति या नागरिक को नुकसान या हानि हुई हो। न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रामसुब्रमण्यन द्वारा लिखा गया था। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने एक अलग राय लिखी जिसमें कुछ मुद्दों पर असहमति जताई गई।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		○ सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्देश दिया कि उत्तर प्रदेश की याचिका और केरल की अपील को न्यायालय की नियमित पीठों के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए, ताकि उन पर संविधान पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार निर्णय लिया जा सके। **निर्णय के कारण:** अनुच्छेद 19(2) की विस्तृत प्रकृति • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि मुक्त भाषण पर "उचित प्रतिबंध" लगाने के आठ आधार व्यापक और संपूर्ण थे। उन्होंने व्यक्तियों, लोगों के वर्गों, समाज, राज्य, न्यायालय और देश पर सभी संभावित हमलों की आशंका जताई - वे विषय जिनकी रक्षा अनुच्छेद में करने की मांग की गई थी। मुक्त भाषण को किसी भी अतिरिक्त कारणों से प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता था, जिसमें अन्य मौलिक अधिकारों का आह्वान करना भी शामिल है। जहां दो मौलिक अधिकारों ने प्रतिद्वंद्वी दावे किए, उन्हें न्यायिक व्याख्या के स्थापित उपकरणों का उपयोग करके संतुलित किया जाना था। गैर-राज्यीय अभिनेताओं के विरुद्ध मौलिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि कुछ मौलिक अधिकार गैर-राज्य अभिनेताओं के विरुद्ध लागू किए जा सकते हैं। न्यायालय ने स्वीकार किया कि यद्यपि वह मौलिक अधिकारों को निजी व्यक्तियों तक लागू करने के प्रति सतर्क था, लेकिन समय के साथ उसका दृष्टिकोण विकसित हुआ है। एक बार राज्य के विरुद्ध विशेष रूप से लागू किए जाने वाले अधिकार, धीरे-धीरे निजी व्यक्तियों के विरुद्ध उनके द्वारा किए जाने वाले सार्वजनिक कर्तव्यों या कार्यों के संबंध में लागू किए जाने लगे। इसलिए, न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 19 और 21 को राज्य और उसके साधनों के अलावा अन्य पक्षों के विरुद्ध लागू किया जा सकता है। इसने देखा कि शुरू में, केवल राज्य को ही किसी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को वैध रूप से वंचित करने में सक्षम माना जाता था । हालाँकि, समय के साथ, गैर-राज्य अभिनेताओं द्वारा अनुच्छेद 21 का उल्लंघन संभव हो गया था। सबसे पहले, ऐसा इसलिए था क्योंकि अनुच्छेद 21 की व्याख्या किसी व्यक्ति की गरिमा (जैसे आजीविका और पर्यावरण का अधिकार) की रक्षा के लिए कई संबंधित अधिकारों को शामिल करने के लिए की गई थी, और दूसरा, पारंपरिक सरकारी कार्यों को निजी अभिनेताओं और सार्वजनिक-निजी भागीदारी को आउटसोर्स किया गया था। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने असहमति जताई। अपनी आंशिक असहमति वाली राय में, उन्होंने माना कि अनुच्छेद 19 और 21 के तहत मौलिक अधिकारों को निजी अभिनेताओं के खिलाफ लागू नहीं किया जा सकता, जब तक कि उन्हें क़ानून या सामान्य कानून में मान्यता न दी गई हो। गैर-राज्य अभिनेताओं के खिलाफ मौलिक अधिकारों को लागू करना मौलिक अधिकार और सामान्य कानून अधिकार के बीच के अंतर को नजरअंदाज करना होगा। हालाँकि, अनुच्छेद 21 के उल्लंघन के लिए एक निजी व्यक्ति के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट मांगी जा सकती है, क्योंकि अवैध हिरासत, चाहे राज्य या किसी निजी पक्ष द्वारा की गई हो, बंदी के जीवन और स्वतंत्रता पर एक समान प्रभाव डालती है। सरकार किसी एक मंत्री के बयान के लिए जिम्मेदार नहीं • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि मनमाने बयान देने वाले मंत्रियों पर अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 'मंत्रियों के लिए आचार संहिता' को अदालत में लागू नहीं किया जा सकता, और प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का मंत्रिपरिषद पर अनुशासनात्मक नियंत्रण नहीं है। • सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि राज्य के मामलों के बारे में या सरकार की रक्षा के लिए किसी मंत्री द्वारा दिया गया बयान सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत का हवाला देकर सरकार के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसने देखा कि संविधान के अनुच्छेद 75(3) और 164(2) में वर्णित सामूहिक जिम्मेदारी के सिद्धांत के अनुसार मंत्रिपरिषद को विधायिका के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, न कि मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री के प्रति। भले ही प्रत्येक व्यक्तिगत मंत्री मंत्रिपरिषद द्वारा सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयों के लिए जिम्मेदार होता है, लेकिन विधायिका के बाहर दिए गए व्यक्तिगत मंत्रियों के बयानों को मंत्रिपरिषद के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। इसके विपरीत, न्यायमूर्ति नागरत्ना ने (अपनी आंशिक असहमतिपूर्ण राय में) माना कि किसी मंत्री द्वारा आधिकारिक हैसियत में दिया गया बयान सरकार का माना जा सकता है, यदि वह स्वयं सरकार के विचारों का प्रतिनिधित्व करता हो । संवैधानिक अपकृत्य के लिए आवश्यकताएँ • सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि सरकार को किसी मंत्री के मात्र एक बयान के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, जो किसी नागरिक या व्यक्ति के संवैधानिक अधिकारों को कमजोर करता है। इसे केवल तभी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जब उस बयान के परिणामस्वरूप, सार्वजनिक अधिकारियों ने कुछ ऐसा किया या करने में विफल रहे, जिससे नागरिक या व्यक्ति को नुकसान या हानि हुई। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने सरकारी एजेंटों के कृत्यों और चूकों को निर्धारित करने के लिए एक उचित ढांचे की आवश्यकता की पहचान की, जो एक संवैधानिक अपकृत्य होगा। उन्होंने कहा कि अगर उसके एजेंटों के बयानों से किसी नागरिक या व्यक्ति को नुकसान या हानि होती है, तो सरकार को जिम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि बयानों में व्यक्त किए गए विचार उसके अपने विचारों से मेल नहीं खाते। निर्णय देखें

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
28	'नोटबंदी' को संवैधानिक चुनौती।	**विवेक नारायण शर्मा बनाम भारत संघ** **2023 आईएनएससी 2** **(2 जनवरी 2023)** डब्ल्यू.पी.(सी) संख्या 906/2016 **न्यायाधीश:** न्यायमूर्ति सैयद ए. नजीर, न्यायमूर्ति भूषण आर. गवई, न्यायमूर्ति अज्जिकुट्टीरा एस. बोपन्ना, न्यायमूर्ति वी. रामासुब्रमण्यम, न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना **प्रश्न:** क्या 'विमुद्रीकरण' (अर्थात् 500 और 1000 रुपये के नोट वैध मुद्रा नहीं रहेंगे) कानूनी और संवैधानिक था। सर्वोच्च न्यायालय ने 5 मुद्दे तय किये: 1. क्या (i) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 ("**आरबीआई अधिनियम**") की धारा 26(2) के तहत केंद्र सरकार को बैंक नोटों की " किसी भी श्रृंखला " को अवैध घोषित करने की शक्ति का मतलब यह है कि केंद्र सरकार किसी विशेष मूल्यवर्ग (500 रुपये और 1,000 रुपये) के बैंक नोटों की सभी श्रृंखलाओं को अवैध घोषित कर सकती है ; और (ii) यदि केंद्र सरकार किसी विशेष मूल्यवर्ग की सभी श्रृंखलाओं को हटा सकती है , तो क्या यह केंद्र सरकार को अत्यधिक शक्ति सौंपने के बराबर है। 2. क्या 8 नवंबर 2016 की अधिसूचना ("**विमुद्रीकरण अधिसूचना**") को रद्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया पर आधारित थी। 3. क्या 2016 की अधिसूचना को असंगत कार्रवाई मानकर रद्द कर दिया जाना चाहिए। 4. क्या 2016 की अधिसूचना द्वारा नोटों के विनिमय के लिए प्रदान की गई समयावधि उचित थी। 5. क्या आरबीआई के पास विनिर्दिष्ट बैंक नोट (देयताओं की समाप्ति) अधिनियम, 2017 ("**बैंक नोट अधिनियम 2017**") की धारा 4(2) के अंतर्गत बैंक नोट अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं में निर्दिष्ट अवधि से परे विमुद्रीकृत नोटों को स्वीकार करने की स्वतंत्र शक्ति है। **तथ्यात्मक पृष्ठभूमि:** • 8 नवंबर 2016 को, केंद्र सरकार ने RBI अधिनियम, 1934 की धारा 26 (2) के तहत विमुद्रीकरण अधिसूचना जारी की। RBI अधिनियम की धारा 26 (2) में कहा गया है कि RBI के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश पर, केंद्र सरकार यह घोषणा कर सकती है कि किसी भी मूल्यवर्ग के बैंक नोटों की " किसी भी श्रृंखला " को कानूनी निविदा नहीं माना जाएगा। केंद्र सरकार ने शुरू में RBI के केंद्रीय बोर्ड से भारतीय अर्थव्यवस्था में नकली नोटों और काले धन को कम करने के लिए कुछ उच्च मूल्य वाले करेंसी नोटों के विमुद्रीकरण की सिफारिश करने पर विचार करने का अनुरोध किया था। RBI के केंद्रीय बोर्ड ने प्रस्ताव पर विचार किया और विमुद्रीकरण की सिफारिश की और उसके बाद, केंद्र सरकार द्वारा विमुद्रीकरण अधिसूचना जारी की गई। • विमुद्रीकरण अधिसूचना में घोषित किया गया कि 500 और 1000 रुपये के सभी मौजूदा श्रृंखला के नोट 9 नवंबर 2016 से वैध मुद्रा नहीं रहेंगे। विमुद्रीकरण की नीति ने व्यक्तियों के लिए विभिन्न बैंकों में अपने बैंक नोटों को बदलने के लिए एक समय अवधि (शुरू में 30 दिसंबर 2016 तक और बाद में अधिसूचनाओं द्वारा 30 जून 2017 तक) तय की, जो कुछ शर्तों के अधीन थी। • इसके बाद भारत की संसद ने बैंक नोट अधिनियम, 2017 पारित किया। बैंक नोट अधिनियम की धारा 3 में प्रावधान किया गया है कि विमुद्रीकरण अधिसूचना के तहत वैध मुद्रा नहीं रह गए निर्दिष्ट बैंक नोटों को अब RBI द्वारा कानूनी रूप से गारंटी नहीं दी जाएगी। 2017 अधिनियम की धारा 4 में कुछ वर्गों के लोगों को निर्दिष्ट बैंक नोट RBI को वापस करने के लिए एक रियायती अवधि प्रदान की गई है। • विमुद्रीकरण अधिसूचना और नीति की कानूनी वैधता को विभिन्न उच्च न्यायालयों और भारत के सर्वोच्च न्यायालय में कई याचिकाओं में चुनौती दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे सभी मामलों को अपने पास स्थानांतरित कर दिया और मामले को न्यायालय की संविधान पीठ (पांच न्यायाधीशों) को सौंप दिया। **सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:** • सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने 4:1 के बहुमत से माना कि विमुद्रीकरण की नीति और विमुद्रीकरण अधिसूचना कानूनी और संवैधानिक रूप से वैध थी। न्यायमूर्ति गवई ने अपनी और न्यायमूर्ति नजीर, न्यायमूर्ति बोपन्ना और न्यायमूर्ति रामसुब्रमण्यम की ओर से बहुमत का फैसला लिखा। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने असहमति जताते हुए अल्पमत की राय लिखी। • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि केंद्र सरकार के पास आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) के तहत बैंक नोटों की 'सभी' श्रृंखलाओं को अमान्य घोषित करने का अधिकार है और इसमें नोटों की एक मूल्यवर्ग की सभी श्रृंखलाओं को अमान्य करने का अधिकार भी शामिल है। बहुमत ने आगे कहा कि इस तरीके से प्रावधान की व्याख्या करने से सरकार को अत्यधिक शक्ति नहीं मिलती है क्योंकि इस शक्ति का प्रयोग केवल आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश पर ही किया जा सकता है। बहुमत ने माना कि विमुद्रीकरण अधिसूचना: (i) दोषपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया पर आधारित नहीं थी; (ii) आनुपातिक थी; और (iii) नोटों के आदान-प्रदान की समय अवधि उचित थी। • न्यायमूर्ति नागरत्ना द्वारा असहमतिपूर्ण राय में कहा गया कि केवल आरबीआई का केंद्रीय बोर्ड ही आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) के तहत बैंक नोटों की "किसी भी" (और "सभी" नहीं) श्रृंखला के विमुद्रीकरण की सिफारिश कर सकता है। केंद्र सरकार ऐसी सिफारिश को स्वीकार करने और इसे लागू करने के लिए धारा 26(2) के तहत अधिसूचना जारी करने का विकल्प चुन सकती है। न्यायमूर्ति नागरत्ना के विचार में, केंद्र सरकार आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश के बिना केवल संसद में कानून पारित करके बैंक नोटों की "किसी भी" या "सभी" श्रृंखला का विमुद्रीकरण कर सकती है।

क्रम संख्या	विषय	निर्णय सारांश
		निर्णय के कारण: आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) की व्याख्या • सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) में प्रयुक्त शब्द "किसी भी श्रृंखला" के दायरे की व्याख्या आरबीआई अधिनियम की विशेष प्रकृति और उद्देश्यों के प्रकाश में की जानी चाहिए। आरबीआई की स्थापना संघ सरकार की ओर से बैंक नोट और मुद्रा जारी करने के उद्देश्य से की गई थी और यह शक्ति आरबीआई अधिनियम के तहत भारतीय संसद द्वारा आरबीआई को प्रदान की गई थी। चूंकि संसद ने स्वयं आरबीआई अधिनियम के तहत आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिशों पर कार्य करने के लिए केंद्र सरकार को शक्तियां प्रदान की हैं, इसलिए न्यायालय ने माना कि ऐसी शक्तियों की व्याख्या प्रतिबंधात्मक तरीके से नहीं की जा सकती । इसका मतलब यह था कि धारा 26(2) में किसी मूल्यवर्ग की "किसी भी श्रृंखला" शब्द का अर्थ किसी मूल्यवर्ग की "सभी श्रृंखला" हो सकता है। इस प्रकार, आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश पर संघ सरकार 500 और 1,000 रुपये के बैंक नोटों की सभी श्रृंखलाओं को बंद कर सकती है । अपनी असहमति में, न्यायमूर्ति नागरत्ना ने माना कि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) केवल आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड द्वारा शुरू किए गए विमुद्रीकरण के प्रस्तावों तक ही सीमित थी। केंद्र सरकार और आरबीआई द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ रिकॉर्ड की जांच करने पर, न्यायमूर्ति नागरत्ना ने पाया कि विमुद्रीकरण का प्रस्ताव केंद्र सरकार द्वारा शुरू किया गया था, न कि आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड द्वारा। चूंकि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, इसलिए उन्होंने माना कि विमुद्रीकरण अधिसूचना गैरकानूनी थी। इसके अलावा, इस तरह की कवायद के गंभीर आर्थिक परिणामों को देखते हुए, इस तरह के विमुद्रीकरण को कानून द्वारा किया जाना चाहिए था, न कि विमुद्रीकरण अधिसूचना जैसी कार्यकारी कार्रवाई द्वारा। अत्यधिक प्रतिनिधिमंडल का मुद्दा • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि यदि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) में प्रयुक्त शब्द "कोई भी श्रृंखला" केंद्र सरकार को किसी मूल्यवर्ग के सभी श्रृंखलाओं को विमुद्रीकृत करने की अनुमति देता है, तो इससे केंद्र सरकार को अनियंत्रित, मनमाना और अत्यधिक शक्तियाँ प्राप्त होंगी। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रत्यायोजित शक्तियों के दुरुपयोग की संभावना मात्र किसी कानून को रद्द करने का आधार नहीं है । न्यायालय ने कहा कि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) में एक अंतर्निहित सुरक्षा है क्योंकि विमुद्रीकरण का निर्णय आरबीआई के केंद्रीय बोर्ड की सिफारिश पर लिया जाना था। इस प्रकार, न्यायालय ने माना कि धारा 26(2) अत्यधिक प्रत्यायोजन की समस्या से ग्रस्त नहीं है। अपनी असहमतिपूर्ण राय में, न्यायमूर्ति नागरत्ना ने कहा कि आरबीआई अधिनियम की धारा 26(2) के तहत, केवल आरबीआई का केंद्रीय बोर्ड ही विमुद्रीकरण के लिए प्रस्ताव पेश कर सकता है, लेकिन वह "सभी" श्रृंखलाओं या बैंक नोटों के "सभी" मूल्यवर्ग के लिए ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि इससे आरबीआई को अत्यधिक प्रत्यायोजित शक्तियां मिल जाएंगी। आनुपातिकता और तर्कसंगतता • याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि विमुद्रीकरण का कठोर उपाय, जिससे नागरिकों को कठिनाई हुई, से बचा जा सकता था यदि सरकार ने वैकल्पिक उपाय अपनाए होते जो कम कठिनाई पैदा करते, और इसलिए, विमुद्रीकरण अधिसूचना उस उद्देश्य के लिए असंगत थी जिसे वह प्राप्त करना चाहती थी। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि विमुद्रीकरण की नीति ने आनुपातिकता की कसौटी को पूरा किया क्योंकि प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों (भारत की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए नकली मुद्रा और आतंकवाद के वित्तपोषण पर अंकुश लगाना) और उठाए गए उपायों (500 और 1,000 रुपये के नोटों का विमुद्रीकरण) के बीच एक सीधा और तर्कसंगत संबंध था। • याचिकाकर्ताओं ने यह भी तर्क दिया था कि पुराने नोटों को नए नोटों से बदलने के लिए प्रदान की गई समय अवधि अनुचित थी (धारा 282)। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि नोटों के आदान-प्रदान के लिए प्रदान किए गए बावन दिन (9 नवंबर 2016 से 30 दिसंबर 2016) जयंतीलाल रतनचंद शाह बनाम भारतीय रिजर्व बैंक [(1996) 9 एससीसी 650] के मामले पर विचार करते हुए अनुचित नहीं थे। उस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने 1978 में बैंक नोटों के विमुद्रीकरण को बरकरार रखा था, जहां विमुद्रीकृत नोटों को बदलने के लिए केवल तीन दिन प्रदान किए गए थे (धारा 285) और कहा कि अधिक लंबी अवधि प्रदान करने से विमुद्रीकरण का उद्देश्य कमजोर होगा (धारा 286)। इस आधार पर, न्यायालय ने माना कि विमुद्रीकृत नोटों के आदान-प्रदान के लिए 2016 की अधिसूचना में दी गई बावन दिनों की अवधि अनुचित नहीं थी 2017 अधिनियम के तहत आरबीआई की स्वतंत्र शक्तियां • याचिकाकर्ताओं ने यह भी कहा कि आरबीआई के पास बैंक नोट अधिनियम की धारा 4(2) के तहत 2016 की अधिसूचना में निर्दिष्ट अवधि के बाद भी विमुद्रीकृत नोट स्वीकार करने की स्वतंत्र शक्तियां हैं, बशर्ते कि नोट जमा न करने के कारण संतोषजनक हों। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने धारा 4(2) को बैंक नोट अधिनियम की धारा 3 और 4(1) के संदर्भ में पढ़ा। अधिनियम की धारा 3 में कहा गया है कि विमुद्रीकृत बैंक नोटों पर केंद्र सरकार की गारंटी नहीं रह गई है और वे अब आरबीआई की देनदारी नहीं हैं, जबकि धारा 4(1) भारत के नागरिकों के साथ-साथ अन्य वर्गों के लोगों को केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार विमुद्रीकृत बैंक नोटों के आदान-प्रदान की अनुमति देती है। इस प्रकार, न्यायालय ने माना कि बैंक नोट अधिनियम एक एकीकृत योजना थी और विमुद्रीकृत बैंक नोटों के किसी भी विनिमय के लिए केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट शर्तों का पालन करना होगा और आरबीआई के पास विमुद्रीकृत नोटों को स्वीकार करने की कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं थी । निर्णय देखें